पुनः प्रकाशन

—बहुत समय से यह पुस्तक 'जैनधर्म की उदारता' अनुपलब्ध थी, और इसकी निरन्तर माँग आती रहती है। अतः इसकी नूतन आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। उसके यह कुछ मुद्रित पृष्ठ आपकी सेवा में प्रेषित हैं। इस आवृत्ति मे पीछे मुद्रित नामवाले महानुभावों की सम्मतियां तो छपेंगी ही,

किन्तु मेरी तीव्र अभिलाषा है कि इस पुस्तक में आपकी भी महनीय सम्मति प्रकाशित हो, जिससे इसके महत्व में और भी वृद्धि हो सके।

अत. आपसे सानुरोध निवेदन है कि अपनी सम्मति एक सप्ताह के भीतर ही मेरे निम्नांकित पते पर भेजने की कृपा करें, ताकि इसी आवृत्ति मे उसका उपयोग किया जा सके।

आपका—

परमेष्ठीदास जैन.

२५-१-७६

जैनेन्द्र प्रेस,
ललितपुर (उ. प्र.)

॥ श्री परमेष्ठिने नमः ॥

जैन धर्म की उदारता

पापियों का उद्धार

जो प्राणियों का उद्धारक हो उसे धर्म कहते हैं। इसीलिये धर्म का व्यापक, सार्व या उदार होना आवश्यक है। जहाँ संकुचित दृष्टि है, स्वपर का पक्षपात है, शारीरिक अच्छाई बुराई के कारण आत्मिक नीच-ऊँचपने का भेदभाव है वहाँ धर्म नहीं हो सकता। धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। शारीरिक दृष्टि से तो कोई भी मानव पवित्र नहीं है। शरीर सभी अपवित्र हैं। इसलिये आत्मा के साथ ही धर्म का सम्बन्ध मानना विवेक है। लोग जिस शरीर को उच्च समझते हैं उस शरीर वाले दुर्गति में भी गये हैं, और जिनके शरीर नीच समझे जाते हैं वे भी सुगति को प्राप्त हुए हैं। इसलिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म चमड़े में नहीं किन्तु आत्मा में होता है। इसीलिये जैन धर्म इस बात का स्पष्टतया प्रतिपादन करता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी शुद्धता के अनुसार उच्च पद प्राप्त कर सकता है। जैन धर्म का शरण लेने के लिये उसका द्वार सबके लिये सदा खुला है। इस बात को रविषेणाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है –

अनाथानामबंधूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।
निजशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥

अर्थात्—जो अनाथ हैं, बांधवविहीन हैं, दारिद्र अत्यन्त दुखी हैं उनके लिये जैन धर्म परम शरणभूत है।

यहां पर कल्पित जातियों या किसी वर्ण का उल्लेख करके सर्व-साधारण को जैनधर्म को ही एक शरणभूत बत[ाया] गया है। जैनधर्म में मनुष्यों की तो बात क्या, पशु पक्षी प्राणि-मात्र के कल्याण का विचार किया गया है।

आत्मा का सच्चा हितैषी, जगत के प्राणियों को पार लग[ाने] वाला महा मिथ्यात्व के गड्ढे से निकालकर सन्मार्ग [पर] आरूढ़ करा देने वाला और प्राणिमात्र को प्रेम का पाठ पढ़[ाने] वाला सर्वज्ञ-कथित एक जैन धर्म है।

जैनधर्म सिखाता है कि अहम्मन्यता को छोड़कर मनु[ष्य] से मनुष्यता का व्यवहार करो प्राणी मात्र से मैत्री भाव रख[ो] और निरन्तर परहित-निरत रहो। मनुष्य ही नहीं, पशुओं तक के कल्याण का उपाय सोचो और उन्हें घार दुःखदावान[ल] से निकालो।

धर्मशास्त्र-इसके ज्वलंत प्रमाण हैं कि जैनाचार्यों ने हाथी सिंह शृगाल शूकर, बन्दर नोला, आदि प्राणियों को भ[ी] धर्मोपदेश देकर उनका कल्याण किया था (देखो आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४६ इसीलिये महात्माओं को 'अकारणबंधु' कहकर पुकारा गया है। हर सच्चे जैन का कर्तव्य है कि य[दि] महा दुराचारी को भी धर्मोपदेश देकर उसका कल्याण करे।

इस सम्बन्ध में अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में पाये जाते हैं यथा

(१) जिनभक्त धनदत्त सेठ ने महाव्यसनी वेश्यासक्त दृढ़सूर्य को फांसी पर लटका हुआ देखकर वहीं उसे णमोकार मन्त्र दिया था जिसके प्रभाव से वह पापात्मा पुण्यात्मा बनकर देव गति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वही देव धनदत्त सेठ की स्तुति करता हुआ कहता है:—

अहो श्रेष्ठिन् ! जिनाधीशचरणार्चनकोविद !
अहं चौरो महापापी दृढसूर्याभिधानकः ॥३१॥
त्वत्प्रसादेन भो स्वामिन् स्वर्गे सौधर्मनामनि ।
देवो महर्द्धिको जातो ज्ञात्वा पूजयत सुधी ॥३२॥

—आराधनाकथा० २१ वीं।

अर्थात्—जिन चरण-पूजन में कुशल हे श्रेष्ठी ! मैं दृढ़सूर्य नामक महापापी चोर आपके प्रसाद से सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ।

इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि प्रत्येक जैन का कर्तव्य महापापी को भी पाप मार्ग से निकालकर सन्मार्ग में लगाना है। जैनधर्म में यह शक्ति है कि वह महा पापियों का उद्धार करके शुभ गति में पहुँचा सकता है। यदि जैनधर्म की उदारता पर विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम होगा कि इसमें विश्वधर्म बनने की योग्यता है अथवा जैनधर्म ही विश्वधर्म हो सकता है। जैनाचार्यों ने ऐसे ऐसे पापियों का उद्धार बतलाया है कि उनकी कथायें सुनकर पाठक आश्चर्य चकित रह जायेंगे जैसे—

(२) अनंगसेना नामक वेश्या अपने वेश्या कर्म को छोड़ कर जैन-दीक्षा ग्रहण करती है और जैनधर्म की आराधना करके स्वर्ग में जाती है। (३) यशोधर मुनि ने मत्स्यभक्षी मृगसेन धीवर को णमोकार मन्त्र दिया और व्रत ग्रहण कराया जिससे वह मर कर श्रेष्ठिकुल मे उत्पन्न हुआ। (४) कपिल ब्राह्मण ने गुरुदत्त मुनि को आग लगाकर जला डाला, फिर भी वह पापी अपने पापों का प्रायश्चित करके स्वयं मुनि हो गया। (५) ज्येष्ठा नामक आर्यिका ने एक मुनि से शीलभ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया, फिर भी वह पुनः शुद्ध होकर आर्यिका हो गई और स्वर्ग गई। (६) राजा मधु ने अपने माण्डलिक राजा की स्त्री को अपने यहां बलात्कारपूर्वक रख लिया और उससे विषय-भोग करता रहा, फिर भी वह दोनों मुनि-दान देते थे और अन्त में दोनों ही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में गये। (७) शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया, बाद मे वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकान्ता नामक आर्यिका के पास गई और दीक्षा लेकर गई। (८) वेश्यालंपटी अंजन चोर उसी भव से मोक्ष जा जैनियों का भगवान बन गया। (९) मॉसभक्षी मृगध्वज मुनिदीक्षा ले ली और वह भी कर्म काटकर परमात्मा बन ग (१०) मनुष्यभक्षी सौदास राजा मुनि होकर उसी भव से मो गया। (११) यमपाल चाण्डाल की कथा तो जैनधर्म की उदार प्रगट करने के लिये सूर्य के समान है।

जिस चाण्डाल का काम लोगों को फांसी पर लटका प्राण-नाश करना था वही अछूत कहा जाने वाला पापात्मा थ ह व्रत के कारण देवों द्वारा अभिषिक्त और पूज्य हो गया

यथा—

> तदा तद्व्रतमाहात्म्यान्महाधर्मानुरागतः ।
> सिंहासने समारोप्य देवताभिः सुनिर्मलैः ॥२६॥
> अभिषिच्य प्रहृष्टेन दिव्यरत्नादिभिः सुधीः ।
> नानारत्नसुवर्णाद्यैः पूजितः परमादरात् ॥२७॥

अर्थात्—उस यमपाल चाण्डाल के व्रत के माहात्म्य से तथा धर्मानुराग से देवों ने सिंहासन पर विराजमान करके उसका शुभ जल से अभिषेक किया और फिर उसका अनेक वस्त्र तथा आभूषणों से सम्मान किया उसकी पूजा की।

इतना ही नहीं किन्तु राजा ने भी उस चाण्डाल के प्रति नतमस्तक होकर उससे क्षमा याचना की, तथा स्वयं भी उसकी पूजा की। यथा—

> तं प्रभावं समालोक्य राजाद्यैः परया मुदा ।
> सम्पूजितः स मातङ्गो यमपालो गुणोज्ज्वलः ॥२८॥

अर्थात्—उस चाण्डाल के व्रत-प्रभाव को देखकर राजा तथा प्रजा ने बड़े ही हर्ष के साथ गुणों से समुज्ज्वल उस यमपाल चाण्डाल की पूजा की।

यह है सच्ची सार्वजनिक आदर्श उदारता! गुणों के सामने न तो हीन जाति का विचार हुआ और न उसकी अस्पृश्यता ही देखी गई। मात्र एक चाण्डाल के एकमात्र व्रत के कारण ही उसका अभिषेक और पूजन तक किया गया। यह है जैनधर्म की उदारता और उसके विवेक का एक नमूना! इसी प्रकार

में जाति-मद न करने की शिक्षा देते हुए स्पष्ट लिखा है—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः ।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

अर्थात्—व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा गया इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति की उच्चता का गर्व नहीं करना चाहिये।

यहाँ जाति-मद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है! जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर जाति पांति का पचड़ा तोड़कर और वर्ण-भेद को महत्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है। अमितगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है :

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि ।
कुलीनाः नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः ॥

अर्थात् जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुआ कहा जाता वे शील धर्म को धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिनके संबंध में उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी मनुष्य नरक गये हैं।

जैन धर्म की यह विशेषता है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति नर से नारायण हो सकता है। मनुष्य की बात तो दूर रही भगवान समन्तभद्र के कथनानुसार तो—

"श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात् ।"

अर्थात्—धर्मधारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है।

उच्च और नीचों में समभाव

जैनाचार्यों ने पद पद पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि प्रत्येक प्राणी को धर्ममार्ग बतलाओ, उसे दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश दो और यदि वह सच्चे रास्ते पर आ जाये तो उसके साथ गुरु सम व्यवहार करो। सच बात तो यह है कि ऊँचों को नीच नहीं बनाया जाता वे तो स्वयं ऊँचे हैं हा मगर जो नीच हैं वस्तुतः वे पतित हैं, उन्हें जो उच्च पद पर स्थित करे वही उदार एवं सच्चा धर्म है। यह खूबी इस पतित-पावन जैनधर्म में है। इस सम्बन्ध में जैनाचार्यों ने कई स्थानों पर स्पष्ट विवेचन किया है। पंचाध्यायीकार ने स्थितिकरण अंग का विवेचन करते हुये लिखा है।

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात्।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥८०७॥

अर्थात्—निज पद से भ्रष्ट हुये लोगों को अनुग्रह पूर्वक उसी पद में पुनः स्थित कर देना ही स्थितिकरण अङ्ग है।

इससे यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या पतित हुए व्यक्ति को पुनः शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे फिर से उसके उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये। यही धर्म का वास्तविक रूप है। स्थितिकरण अंग का वर्णन करते

में जाति-मद न करने की शिक्षा देते हुए स्पष्ट लिखा है—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः ।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

अर्थात्—व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा ग इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति की उच्चता गर्व नहीं करना चाहिये।

यहाँ जाति-मद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है! जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर जाति पांति का प तोड़कर और वर्ण-भेद को महत्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है। अमितगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है :

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि ।
कुलीनाः नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः ॥

अर्थात जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुआ कहा जाता है वे शील धर्म को धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिनके संबंध में उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी मनुष्य नरक गये हैं।

जैन धर्म की यह विशेषता है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति नर से नारायण हो सकता है। मनुष्य की बात तो दूर रही भगवान समन्तभद्र के कथनानुसार तो—

"श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात् ।"

अर्थात—धर्मधारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है।

उच्च और नीचों में समभाव

जैनाचार्यों ने पद पद पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि प्रत्येक
ज्ञाशासु का धर्ममार्ग बतलाओ उसे दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश
ओर यदि वह सच्चे रास्ते पर आजाये तो उसके साथ
हुए सम व्यवहार करो। सच बात तो यह है कि ऊँचों को
ही नहीं बनाया जाता वे तो स्वयं ऊँचे हैं हां मगर जो
ए हैं पतित हैं, उन्हें जो उच्च पद पर स्थित
द ब । उदार एवं सच्चा धर्म है। यह गुण इस पतित–
पावन जैनधर्म में है । इस सम्बन्ध में जैनाचार्यों ने कई स्थानों
स्पष्ट विवेचन किया है पंचाध्यायीकार ने स्थितिकरण
के का विवेचन करते हुये लिखा है

सुस्थितीकरणं नाम परषां सदनुग्रहात् ।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥८०७॥

अर्थात्–निज पद से भ्रष्ट हुये लोगों को अनुग्रह पूर्वक
सी पद में पुन स्थित कर देना ही स्थितिकरण अङ्ग है।

इससे यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या
त हुए व्यक्ति को पुन शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे
र से अपने उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये । यही धर्म
वास्तविक अंग है । निर्विचिकित्सा अंग का वर्णन करते

हुये भी पंचाध्यायीकार ने इसी प्रकार उदारतापूर्ण कथन कि है। यथा -

दुर्दैवाद्दुःखिते पुंसि तीव्रासाताघृणास्पदे।
यन्नादयापरं चेतः स्मृतो निर्विचिकित्सकः॥

अर्थात्- जो पुरुष दुर्दैव के कारण दुखी है और ती असाता के कारण घृणा का स्थान बन गया है उसके अदयापूर्ण चित्त का न होना ही निर्विचिकित्सा है।

निरन्तर धर्म की कोरी चर्चाये करने वाले हम सम्यक्त्व के इस प्रधान अंग को भूल गये है और अभिमान वशीभूत होकर अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। तथा दरिद्रा और दुखियों को नित्य ठुकरा कर जाति मद में रहते है। ऐसे आत्मघातियों को चेतावनी देते हुए पंचाध्यायी ने स्पष्ट लिखा है : -

नैतत्तन्मनस्यज्ञानमस्म्यहं सम्पदां पदम्।
नासावस्मत्समो दीनो वराको विपदां पदम्॥५८४॥

अर्थात्—मनमें इस प्रकार का अज्ञान नहीं होना चाहि कि मै श्रीमान् हूँ, बड़ा हूँ, अतः यह विपत्तियों का मारा दरिद्री मेरे समान नहीं हो सकता।

प्रत्युत प्रत्येक दीन-हीन व्यक्ति के प्रति समानता व्यवहार रखना चाहिये। जो व्यक्ति जातिमद या धनमा मत्त होकर अपने को बड़ा मानता है वह मूर्ख है, अज्ञानी और जिसे मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र सदृश मालूम हो

सम्यग्दृष्टि है, वही ज्ञानी है वही मान्य है वही उच्च है, वही विद्वान है, वही विवेकी है और वही सच्चा पण्डित है। मनुष्यों की तो बात क्या त्रस स्थावर प्राणीमात्र के प्रति सम-भाव रखने का पंचाध्यायीकार ने उपदेश दिया है। यथा—

प्रत्युत ज्ञानमेवैतत्तत्र कर्मविपाकजा ।
प्राणिनः सदृशाः सर्वे त्रसस्थावरयोनयः ॥५८५॥

अर्थात्—दीन हीन प्राणियों के प्रति घृणा नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसा विचार करना चाहिये कि कर्मों के मारे यह जीव त्रस और स्थावर योनि में उत्पन्न हुये हैं लेकिन हैं सब समान ही।

इस प्रकार जैनाचार्यों ने ऊँच नीच का भेदभाव रखने वाले को महा अज्ञानी बताया है और प्राणी मात्र पर सम भाव रखने वाले को सम्यग्दृष्टि और सच्चा ज्ञानी कहा है। इन बातों पर हमें विचार करने की आवश्यकता है। जैनधर्म की उदारता को हमें अब कार्यरूप में परिणत करना चाहिये। एक सच्चे जैनी के हृदय में न तो जाति मद हो सकता है न ऐश्वर्य का अभिमान और न पापी या पतितों के प्रति घृणा ही हो सकती है। प्रत्युत वह तो उन्हें पवित्र बनाकर अपने आसन पर बिठायेगा और जैनधर्म की उदारता को जगत में व्याप्त करने का प्रयत्न करेगा।

जातिभेद का आधार आचरण है

ढाई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जाति-मद में मत्त होकर मनमाने अत्याचार कर रहे थे और मात्र ब्राह्मण ही अपने को धर्माधिकारी मान बैठे थे तब भ० महावीर ने अपने दिव्योपदेश द्वारा जनता में व्याप्त जाति-मूढ़ता निकाल फेंकी और तमाम वर्ण एवं जातियों को धर्म धारण करने का समान अधिकारी घोषित किया था। यही कारण है कि स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने एकबार अपने यह आन्तरिक उद्गार प्रगट किये थे—

"ब्राह्मण धर्म में एक त्रुटि यह थी कि चारो वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रो को समानाधिकार प्राप्त नही थे। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे। क्षत्रिय और वैश्यो को यह अधिकार प्राप्त नही था। और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुत विषयो में अभागे थे। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।"

इसमें सन्देह नहीं कि जैनधर्म ने महान् अधम से अधम और पतित से पतित शूद्र कहलाने वाले मनुष्यों को उस समय अपनाया था जबकि ब्राह्मण जाति उनके साथ पशुतुल्य व्यवहार कर रही थी। जैनधर्म का दावा है कि घोर पापी से पापी या अधम नीच कहा जाने वाला व्यक्ति जैनधर्म की

शरण लेकर निष्पाप और उच्च हो सकता है। यथा—

महापापप्रकर्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मतः।
भवेत् त्रैलोक्यपूज्यो धर्मात्किं भो परं शुभम्॥

अर्थात्—घोर पाप करने वाला प्राणी भी जैनधर्म धारण करने से त्रैलोक्यपूज्य हो सकता है।

जैनधर्म की उदारता इसी बात से स्पष्ट है कि इसको मनुष्य देव तिर्यच और नारकी सभी धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। जैनधर्म पाप का विरोधी है पापी का नहीं। यदि यह पापी का भी विरोध करने लगे उनसे घृणा करने लग जाये तो फिर किसी भी अधम पर्याय वाला प्राणी उच्च पर्याय को कभी प्राप्त ही नहीं कर सकेगा और शुभाशुभ कर्मों की तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जायगी।

जैन शास्त्रों में धर्म धारण करने का ठेका किसी वर्ण या जाति को नहीं दिया गया है, किन्तु मन वचन काय से सभी प्राणी धर्म धारण करने के अधिकारी बताये गये हैं। यथा—

"मनोवाक्कायधर्माय मता सर्वेऽपि जन्तवः।"

—श्री सोमदेवसूरि।

ऐसी ऐसी आज्ञायें प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं फिर भी संकुचित दृष्टि वाले जाति-मद में मत्त होकर इन बातों की परवाह न करके अपने को ही सर्वोच्च समझकर दूसरों के कल्याण में जबरदस्त बाधा डाला करते हैं। ऐसे व्यक्ति जैनधर्म की उदारता को नष्ट करके स्वयं तो पाप का बन्ध करते ही हैं साथ ही पतितों के उद्धार में,

अवनतों की उन्नति में और पदच्युतों के उत्थान में बाधक होकर घोर अनर्थ करते हैं।

उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलाने वाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हम में और उसमें क्या भेद रहेगा! किन्तु वे यह नहीं सोच पाते कि भेद होना ही चाहिये इसकी क्या जरूरत है? जिस जाति को वे नीच समझते हैं उसमें क्या सभी लोग पापी, अन्यायी, अत्याचारी या दुराचारी होते हैं? अथवा जिसे वे उच्च समझे बैठे हैं उस जाति में क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचार के अवतार होते हैं? यदि ऐसा नहीं है तो फिर हमें किसी वर्ण या जाति को ऊँच या नीच कहने का क्या अधिकार है?

हाँ, यदि भेदव्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे ऊँच कहना चाहिये। श्रीरविषेणाचार्य ने इसी बात को पद्मपुराण में इस प्रकार लिखा है:—

> चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं।
> सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम्॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डालादि के तमाम विभाग आचरण के भेद से ही लोक में प्रसिद्ध हुआ है।

इसी बात का समर्थन और भी स्पष्ट शब्दों में आचार्य श्री अमितगति ने इस प्रकार किया है:—

> आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।
> न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्विकी॥
> गुणैः संपद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते॥

अर्थात् शुभ और अशुभ आचरण के भेद से ही जातियों में भेद की कल्पना की गई है। ब्राह्मणादिक जाति कोई कहीं पर निश्चित, वास्तविक या स्थाई नहीं है। कारण कि गुणों के होने से ही उच्च जाति होती है और गुणों के नाश होने से उस जाति का भी नाश हो जाता है।

सोचिये! इससे अधिक स्पष्ट सुन्दर तथा उदार कथन और क्या हो सकता है? अमितगति आचार्य ने उक्त कथन में यह स्पष्ट घोषित किया है कि जातियाँ काल्पनिक हैं वास्तविक नहीं। उनका विभाग शुभ और अशुभ आचरण पर आधारित है, न कि जन्म पर, तथा कोई भी जाति स्थायी नहीं है। यदि कोई गुणी है तो उसकी जाति उच्च है और यदि कोई दुर्गुणी है तो उसकी जाति नष्ट होकर नीच हो जाता है। इससे सिद्ध है कि नीच से नीच जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति भी शुद्ध होकर जैनधर्म धारण कर सकता है और वह उतना ही पवित्र हो सकता है जितना कि जन्म से धर्म का अधिकारी माना जाने वाला कोई भी जैन होता है। प्रत्येक व्यक्ति जैनधर्म धारण कर आत्मकल्याण कर सकता है। यहाँ किसी जातिविशेष के प्रति राग द्वेष नहीं है, किन्तु मात्र आचरण पर ही दृष्टि रखी गई है। जो आज ऊँच है वही कल अनार्यों के आचरण करने से नीच भी बन जाता है। यथा—

"अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचर ।"

— रविषेणाचार्य।

जैन समाज का कर्तव्य है वह इन—आचार्य-वाक्यों पर विचार करे, जैनधर्म की उदारता को समझे और दूसरों

को निःसंकोच जैनधर्म में दीक्षित करके उन्हें अपने समान बनाले। कोई भी व्यक्ति जब पतितपावन जैन धर्म को धारण करले तब उसको तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार दे देना चाहिये और उसे अपने भाई से कम नहीं समझना चाहिये। यथा –

> विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
> जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बांधवोपमाः॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो आचरण के भेद से कल्पित किये गये हैं, किन्तु जब वे जैनधर्म धारण कर लेते हैं तब सभी को अपने भाई के समान ही समझना चाहिये।

वर्ण-परिवर्तन

कुछ लोगों को ऐसी धारणा है कि जाति भले ही बदल जाय मगर वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता। उनकी यह भूल है, क्यों कि वर्ण-परिवर्तन हुये बिना वर्ण की उत्पत्ति एवं उसकी व्यवस्था भी नहीं बन सकती। जिस ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च माना गया है उसकी उत्पत्ति पर तनिक विचार कीजिये, तो मालूम होगा कि वह तीनों वर्णों के व्यक्तियों में से उत्पन्न हुआ है। आदिपुराण में लिखा है कि जब भरत राजा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित करने का विचार किया था तब राजाओं को आज्ञा दी थी कि—

> सदाचारैर्निजैरिष्टैरनुजीविभिरन्विताः।
> अद्यास्मदुत्सवे यूयमायातेति पृथक् पृथक्॥ (पर्व ३८-१०)

अर्थात् - आप लोग अपने सदाचारी इष्ट मित्रों सहित तथा नौकर चाकरों को लेकर आज हमारे उत्सव में आओ।

इस प्रकार भरत चक्रवर्ती ने राजा प्रजा नौकर चाकरों को बुलाया था, उनमें क्षत्री, वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग थे। उनमें से जो लोग हरे अंकुर को मर्दन करते हुये राज-महल में पहुँच गये उन्हें तो चक्रवर्ती ने निकाल दिया और जो लोग हरे घास का मर्दन न करके बाहर ही खड़े रहे या लौट कर वापिस जाने लगे उन्हें रोककर विधिवत् ब्राह्मण बना दिया। इस प्रकार तीन वर्णों में से विवेकी और दयालु लोगों को ब्राह्मण वर्ण में स्थापित किया गया।

अब यहां विचारणीय बात यह है कि जब शूद्रों में से भी ब्राह्मण बनाये गये, वैश्यों में से भी बनाये गये और क्षत्रियों में से भी ब्राह्मण तैयार किये गये तब वर्ण अपरिवर्तनीय कैसे माना जा सकता है?

दूसरी बात यह है कि तीन वर्णों में से छाँट कर एक चौथा वर्ण तो पुरुषों का तैयार हो गया किन्तु उन नये ब्राह्मणों की स्त्रियाँ कैसे ब्राह्मण हुई होंगी? कारण कि वे तो महाराजा भरत द्वारा आमन्त्रित की नहीं गई थीं क्योंकि उनमें राजा लोग और उनके नौकर चाकर आदि ही आये थे। उनमें सब पुरुष ही थे। यह बात इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि उन सब ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत पहनाया गया था। यथा—

तेषां कृतानि चिन्हानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः ।
उपात्तै ब्रह्मसूत्राह्वै रेकाद्येकादशान्तकैः ॥ (पर्व ३८-२१)

अर्थात्—पद्म नामक निधि से ब्रह्मसूत्र लेकर एक से ग्यारह तक (प्रतिमानुसार) उनके चिन्ह किये। अर्थात् उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया।

यह तो सर्वमान्य है कि यज्ञोपवीत पुरुषों को ही पहनाया जाता है। तब उन ब्राह्मणों के लिये स्त्रियां कहां से आई होंगी? कहना न होगा कि वही पूर्व की पत्नियाँ जो क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र होंगी ब्राह्मणी बना ली गई होंगी। तब उनका भी वर्ण परिवर्तित हो जाना निश्चित है। शास्त्रों में भी वर्णलाभ करने वाले को अपनी पूर्व पत्नी के साथ पुनर्विवाह करने का विधान पाया जाता है। यथा—

"पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वः सर्वोऽस्य संमतः।"

आदिपुराण पर्व ३९-६०॥

इतना ही नहीं, किन्तु पर्व ३९ श्लोक ६१ से ७० तक के कथन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन ब्राह्मणों को अन्य मिथ्या दृष्टियों के साथ विवाह संबंध करना पड़ता था, बाद में वे ब्राह्मण वर्ण में ही मिल जाते थे। इस प्रकार वर्णों का परिवर्तित होना स्वाभाविक सा हो जाता है। अतः वर्ण कोई स्थाई वस्तु नहीं है, यह बात सिद्ध हो जाती है। आदिपुराण में वर्ण परिवर्तन के विषय में अक्षत्रियों को क्षत्रिय होने के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:

"क्षत्रियाश्च वृत्तस्थाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः।"

इस प्रकार वर्ण-परिवर्तन की उदारता बतला कर जैन धर्म ने अपना मार्ग बहुत ही सरल एवं सर्वकल्याणकारी बना

या है । यदि पुन इसी उदार पथ धार्मिक मार्ग का अवलम्बन
ा जाय तो जैन समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है
र अनेक मानव जैनधर्म धारण करके अपना कल्याण कर
कते हैं । किसी वर्ण या जाति को स्थाई या गतानुगतिक मान
ा जैनधर्म की उदारता की हत्या करना है । यहां तो कुला
र को छोड़ने से कुल भी नष्ट हो जाता है । यथा—

लावधि कुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः ।
तस्मिन्नसत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां व्रजेत् ॥१८१॥

—आदिपुराण पर्व ४०

अर्थ—ब्राह्मणों को अपने कुल की मर्यादा और कुल के
चारों की रक्षा करना चाहिये । यदि कुलाचार विचारों का
ा नहीं की जाय तो वह व्यक्ति अपने कुल से नष्ट होकर
सरे कुल वाला हो जायगा ।

तात्पर्य यह है कि जाति, कुल, वर्ण आदि सभी क्रियाओं
निर्भर हैं । इनके बिगड़ने-सुधरने पर इनका परिवर्तन हो
ता है ।

गोत्र-परिवर्तन

आश्चर्य है कि सदा आगम और शास्त्रों की दुहाई
वाले कितने ही लोग वर्ण को तो अपरिवर्तनीय मानते ही
साथ ही गोत्र की कल्पना को भी स्थाई एवं जन्मगत मा
हैं। किन्तु जैन शास्त्रों ने वर्ण और गोत्र को परिवर्तन होने
बताकर गुणों की प्रतिष्ठा की है तथा अपनी उदारता का
प्राणी मात्र के लिये खुला कर दिया है। दूसरी बात यह है
गोत्रकर्म किसी के अधिकारों में बाधक नहीं हो सकता।
संबंध में यहा कुछ विशेष विचार करने की आवश्यकता है।

सिद्धान्त-शास्त्रों में किसी कर्म प्रकृति का अन्य प्र
रूप होने को संक्रमण कहा है। उसके ५ भेद होते हैं
उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण।
से नीच गोत्र के दो संक्रमण हो सकते है। यथा—

सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्ता य दुक्खमसुहगदी।
संहदि संठाणदसं णीचापुण्णथिरछक्कं च ॥४२२॥
बीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते ॥४२३॥

—गो० कर्मका०

असातावेदनीय अशुभ गति, ५ संहनन, ५ संस्थान, ना
गोत्र, अपर्याप्त अस्थिरादि ६, इन २० प्रकृतियों के विध्यात

वृत्त और गुण सक्रमण होते हैं।

इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार असाता वेदनीय का वेदनीय के रूप में सक्रमण परिवर्तन) हो सकता है उसी नीच गोत्र का ऊँच गोत्र के रूप में भी परिवर्तन मण) होना सिद्धा न्तशास्त्रों स सिद्ध है। अत किसी को से मरने तक नीचगोत्री ही मानना दयनीय अज्ञान है। सिद्धान्तशास्त्र पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि कोई ीच या अधम से अधम व्यक्ति ऊँच पद पर पहुँच सकता ार वह पावन बन सकता है।

यह तो सभी जानते हैं कि जो व्यक्ति आज लोकदृष्टि में है वही कल लोकमान्य प्रतिष्ठित एव महान् हो जाता भगवान अकलङ्कदेव ने राजवर्तिक में ऊँच नीच गोत्र की ाकार व्याख्या की है

ादयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् ॥
ेषु यत्कृत तन्नीचर्गोत्रम् ॥
ाषु दरिद्राऽप्रतिज्ञातदुःखाः कुलेषु यत्कृत प्राणिनां
तन्नीचर्गोत्र प्रयतव्यम् ॥

ऊँच—नीच गोत्र की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि जो ूजित प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेते हैं वे उच्चगोत्री हैं और गर्हित अर्थात् दुखी दरिद्रा कुल में उत्पन्न होते हैं वे त्री है। यहा किन्तु भी वर्ण की अपेक्षा नहीं रखी गई ब्राह्मण होकर भी यदि वह निद्य एव ज्ञानहीन में है तो नीच गोत्र वाला है और यदि शूद्र होकर

भी राजकुल में उत्पन्न हुआ है अथवा अपने शुभ कर्मों
प्रतिष्ठित हो गया है तो वह उच्च गोत्र वाला है।

[आज भी हरिजन मिनिस्टरों को आदर पूर्वक सह
दिया जाता है—और उन्हें जैन मंदिरों में ले जाया जाता है

वर्ण के साथ गोत्र का कोई भी सम्बन्ध नहीं। कारण
गोत्रकर्म की व्यवस्था तो प्राणीमात्र में सर्वत्र है, किन्तु
व्यवस्था केवल भारतवर्ष के मानवों में ही पाई जाती है।
व्यवस्था मनुष्यों की योग्यता के अनुसार केवल श्रेणी
है, जबकि गोत्र का आधार कर्म है। अतः गोत्र कर्म कुल
अथवा व्यक्ति की प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा के अनुसार उच्च और
गोत्री हो सकता है। इस प्रकार गोत्रकर्म की शास्त्रीय व्य
स्पष्ट होने पर जैनधर्म की उदारता स्पष्ट ज्ञात हो जाती है।
होने से ही जैनधर्म पतितपावन या दीनोद्धारक सिद्ध होता।

पतितों का उद्धार

जैनधर्म की उदारता पर ज्यों ज्यों गहरा विचार किया
है त्यों त्यों उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। जैनधर्म ने
पापियों को पवित्र किया है, दुराचारियों को सन्मार्ग
लगाया है, दीनों को उन्नत किया है और पतितों का उद्धार
अपना जगद्बन्धुत्व सिद्ध किया है। यह सब इतने मात्र
सिद्ध हो जाता है कि जैनधर्म में वर्ण और गोत्र को कोई
उच्चता या नीचता का स्थान नहीं है। जिन्हें जाति का कोई अभि
है ... जैन ग्रन्थकारों ने स्पष्ट शब्दों में यह लिखकर
... चूर चूर कर दिया है कि –

न विप्राविप्रयोरस्ति सर्वथा शुद्धशीलता ।
कालनानादिना गोत्रे स्खलनं क्व न जायते ॥
संयमो नियमः शीलं तपो दानं दमो दया ।
विद्यन्ते तात्त्विका यस्यां सा जातिर्महती मता ॥

अर्थात्—ब्राह्मण और अब्राह्मण की सर्वथा शुद्धि का दावा किया जा सकता क्योंकि इस अनादिकाल से न जाने के कुल या गोत्र में कब पतन हो गया हो ! अतः वास्तव उच्च जाति तो वही है जिसमें वर्तमान में संयम, नियम ।, तप, दान, इन्द्रियदमन और दया पाई जाती है ।

इसी प्रकार और भी अनेक ग्रंथों में वर्ण और जाति की प्रथाओं की धज्जियां उड़ाई गई हैं । प्रमेयकमलमार्तण्ड' में दा खूबी के साथ जाति-कल्पना का खण्डन किया है । ससे सिद्ध है कि जैनधर्म में जाति की अपेक्षा गुणों के लिए ोष स्थान है । महा नीच कहा जाने वाला व्यक्ति भी अपने र्मों से उच्च हो जाता है, भयङ्कर दुराचारी प्रायश्चित लेकर त्र हो जाता है और कभी भी पतित व्यक्ति पावन बन ना है । इस सम्बंध में अनेक उदाहरण पहले दो प्रकरणों दिये गये हैं । उनके अतिरिक्त और भी प्रमाण देखिये—

स्वामी कार्तिकेय महाराज के जीवनचरित्र पर यदि ाल किया जाय तो ज्ञात होगा कि एक व्यभिचारजात क्त भी किस प्रकार परम पूज्य और जैनियों का गुरु सकता है । उस कथा का सार यह है—अग्नि' नामक

राजा ने अपनी 'कृत्तिका' नामक पुत्री से व्यभिचार किया और उससे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा—

स्वपुत्री कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात्।
कैश्चिद्दिनैस्ततस्तस्यां कार्तिकेयो सुतोऽभवत्॥

इसके बाद जब व्यभिचारजात कार्तिकेय बड़ा हुआ और पिता कहो या नाना (?) का अत्याचार ज्ञात हुआ तब वह विरक्त होकर एक मुनिराज के पास जाकर जैन मुनि हो गया। यथा—

नत्वा मुनीन् महाभक्त्या दीक्षामादाय स्वर्गदाम्।
मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्तसप्ततत्त्वविचक्षणः॥

आराधना कथाकोश ६६ वीं कथा।

अर्थात् —वह कार्तिकेय भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार करके स्वर्गदायी दीक्षा लेकर जिनेन्द्रोक्त सप्त तत्त्वों के ज्ञाता मुनि हो गये।

इस प्रकार एक व्यभिचारजात या आजकल के शब्दों में 'दस्सा' या 'बिनैकावार' से भी गये बीते व्यक्ति का मुनि हो जाना जैनधर्म की उदारता का ज्वलन्त प्रमाण है। वह मुनि भी साधारण नहीं, उद्भट विद्वान और अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुये, जिन्हें सारा जैन समाज बड़े गौरव के साथ आज भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करता है। किन्तु दुःख का विषय है कि जातिमद में मत्त होकर जैन समाज अपने उदार धर्म को भूली हुई है और अपने हजारों भाई बहिनों को अपमानित करके उन

निर्मैश्चयार' या दस्सा बनाकर सदा के लिये धर्म और जाति से बहिष्कृत किये रहता है। जैन समाज का कर्तव्य है कि वह स्वामी कार्तिकेय की कथा से कुछ बोध-पाठ ले और जैनधर्म की उदारता का उपयोग करे। कभी किसी कारण से पतित हुये व्यक्ति को या उसकी सन्तान को सदा के लिये धर्म का अनधिकारी बना देना घोर पाप है।

सन्तान को दूषित न मानकर केवल दोषी व्यक्ति को ही शुद्ध कर लेने के सम्बन्ध में जिनसेनाचार्य ने स्पष्ट कथन किया है -

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलं सम्प्राप्तदूषणम् ।
सोऽपि राजादिसम्मत्या शोधयेत् स्वं यदा कुलम् ॥१६८॥
तदास्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसन्ततौ ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः ॥१६९॥

—आदिपुराण, पर्व ४

अर्थ—यदि किसी कारण से किसी के कुल में कोई दूषण लग जाये तो वह राजादि की सम्मति से अपने कुल को जब शुद्ध कर लेता है तब उसे फिर से यज्ञोपवीतादि लेने का अधिकार हो जाता है। यदि उसके पूर्वज दीक्षा योग्य कुल में उत्पन्न हुए हों तो उसके पुत्र पौत्रादि सन्तान को यज्ञोपवीतादि लेने का कहीं भी निषेध नहीं है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी सदोष व्यक्ति की सन्तान दूषित नहीं कही जा सकती। इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक दूषित व्यक्ति शुद्ध होकर दीक्षा योग्य हो जाता है।

दिगम्बराचार्य का संदेश

एक बार इटावा में दिगम्बर जैनाचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—

"जीव मात्र को जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति करने का अधिकार है। जबकि मेंढक जैसे तिर्यंच पूजा कर सकते हैं तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है! याद रक्खो कि धर्म किसी की बपौती जायदाद नहीं है। जैनधर्म प्राणी मात्र का धर्म है, पतित पावन है। वीतराग भगवान पूर्ण पवित्र होते हैं, कोई त्रिकाल में भी उन्हें अपवित्र नहीं बना सकता। कैसा भी कोई पापी या अपराधी हो उसे कड़ी से कड़ी सजा दो, परन्तु धर्मस्थान का द्वार बन्द मत करो। यदि धर्मस्थान ही बन्द हो गया तो उसका उद्धार कैसे होगा? ऐसे परम पवित्र, पतित पावन धर्म को पाकर तुम लोगों ने उसकी कैसी दुर्गति कर डाली है! शास्त्रों में तो पतितों को पावन करने वाले अनेक उदाहरण मिलते हैं, फिर भी पता नहीं कि जैनधर्म के ज्ञाता बनने वाले कुछ जैन विद्वान उसका विरोध क्यों करते हैं! परम पवित्र, पावन और उदार जैनधर्म के विद्वान संकीर्णता का समर्थन करें यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। कहां तो हमारा धर्म पतितों को पावन करने वाला है और कहाँ आज लोग पतितों के संसर्ग से धर्म को भी पतित हुआ मानने लगे हैं! यह बड़े खेद का विषय है।"

स्व० आचार्य सूर्यसागर जी महाराज का यह कथन जैनधर्म की उदारता और वर्तमान जैनों की सङ्कुचित मनोवृत्ति का

स्पष्ट सूचित करता है। लोगों ने स्वार्थ, कषाय, अज्ञान एवं दुराग्रह से वशीभूत होकर उदार जैन मार्ग को कंटकाकीर्ण, संकुचित एवं भ्रमपूर्ण बना डाला है। अन्यथा जैनकथानुसार महा पापियों का उसी भव में उद्धार हो गया है। एक धीवर (मच्छीमार) की लड़की उसी भव में क्षुल्लिका होकर स्वर्ग गई। यथा—

तत्र समाधिगुप्तेन मुनींद्रेण प्ररूपितं।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्य समर्चितम्॥२४॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले॥२५॥

आराधना कथा कोश कथा ४८

अर्थात—मुनि श्री समाधिगुप्त द्वारा निरूपित तथा देवों द्वारा पूजित जिनधर्म का श्रवण करके काणा नाम की धीवर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका हो गई और फिर वह यथाशक्ति तप करके स्वर्ग गई।

जहां मांसभक्षी शूद्र कन्या भी इस प्रकार पवित्र होकर जैनों के लिए पूज्य हो जाती है, वहां उस धर्म की उदारता के संबंध में और क्या कहा जाय? ऐसे ही अनेक व्यक्तियों के चारित्रों से जैन शास्त्र भरे पड़े हैं। उनसे उदारता की शिक्षा ग्रहण करना जैनों का कर्तव्य है।

यह खेद का विषय है कि जिन बातों से हमें परहेज करना चाहिये उनकी ओर हमारा लगाव है और जिनके विषय में धर्मशास्त्र एवं लोकशास्त्र खुला आदेश देते हैं या जिनके

अनेक उदाहरण हमारे पूर्वाचार्य अपने ग्रन्थों में लिख गये हैं उन पर ध्यान नहीं दिया जाता, प्रत्युत विरोध किया जाता है। हमारे धर्मशास्त्रों ने आचारादि से शुद्ध प्रत्येक वर्ण या जाति के व्यक्ति को शुद्ध माना है। तथा—

शूद्रोऽप्युपस्कराचारवपुःशुद्ध्यास्तु तादृशः।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक्॥

—सागारधर्मामृत २-२२

अर्थात्—कोई शूद्र भी है, यदि उसका आसन, वस्त्र, आचार और शरीर शुद्ध है तो वह ब्राह्मणादि के समान है। तथा जाति से हीन (नीच) होकर भी कालादि-लब्धि पाकर वह धर्मात्मा हो जाता है।

यह कितना स्पष्ट एवं उदारतामय कथन है! एक महा शूद्र एवं नीच जाति का व्यक्ति अपने आचार विचार एवं रहन-सहन को पवित्र करके ब्राह्मण के समान बन जाता है। ऐसी उदारता और कहाँ मिलेगी? जैन धर्म गुणों की उपासना करना बतलाता है, उसे जन्मजात शरीर की कोई चिन्ता नहीं है। यथा—

"व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।"

- रविषेणाचार्य

अर्थात—चाण्डाल भी व्रत धारण करके ब्राह्मण हो सकता है।

इतनी महान उदारता और कहाँ हो सकती है? इसी बात की पुष्टि में एक कवि ने लिखा है:—

जहाँ वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर।
तर जाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहा जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान।
वही धर्म है, मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान॥

मनुष्य जाति को एक मान कर प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार देना ही धर्म की उदारता है। जो लोग मनुष्यों में भेद देखते हैं उनके लिये आचार्य लिखते हैं—

"नास्ति जातिकृतो भेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्।"

गुणभद्राचार्य

अर्थात्—जैसा पशुओं में या तिर्यचों में गाय और घोड़े आदि का भेद होता है वैसा मनुष्यों में कोई जातिकृत भेद नहीं है। कारण कि 'मनुष्यजातिरेकैव' मनुष्य जाति तो एक ही है। फिर भी जो लोग इन आचार्य वाक्यों की अवहेलना करके मनुष्यों को सैकड़ों नहीं हजारों जातियों में विभक्त करके उन्हें नीच ऊँच मान रहे हैं उन्हें क्या कहा जाय?

स्मरण रहे कि आगम के साथ ही जमाना भी यह बतला रहा है कि मनुष्य मात्र से बन्धुत्व का नाता जोड़ो उनसे प्रेम करो और कुमार्ग पर जाते हुये लोगों को सन्मार्ग बताओ तथा उन्हें शुद्ध करके अपने हृदय से लगाओ। यही मनुष्य का कर्तव्य जीवन का उत्तम कार्य और धर्म का प्रधान अंग है। भला मनुष्यों के उद्धार के समान और दूसरा धर्म क्या हो सकता है? जो मनुष्यों से घृणा करता है उसने न तो धर्म को पहिचाना है और न मनुष्यता को।

वास्तव में जैन धर्म इतना उदार है कि, जिसे कहीं भी शरण न मिले उसके लिये भी उसका द्वार सदा खुला रहता है। जब कोई मनुष्य दुराचारी होने से जाति-बहिष्कृत और पतित किया जा सकता है तथा अधर्मात्मा करार दिया सकता है तब यह भी स्वयं सिद्ध है कि वही अथवा अन्य व्यक्ति सदाचारी होने से पुनः जाति में स्थापित हो सकता है, पावन हो सकता है और धर्मात्मा बन सकता है। आश्चर्य है कि इतनी सीधी सादी एवं युक्तिसंगत बात क्यों समझ में नहीं आती ?

यदि भगवान महावीर की उदार दृष्टि न होती तो वे महापापी, अत्याचारी मांसलोलुपी, नरहत्या करने वाले, निर्दयी मनुष्यों को इस पतितपावन जैनधर्म की शरण में कैसे आने देते ? और उन्हें उपदेश ही क्यों देते ? उनका हृदय विशाल था, वे सच्चे पतितपावन प्रभु थे, उनमें विश्वप्रेम था, इसीलिये वे अपने शासन में सबको शरण देते थे। समझ में नहीं आता कि भगवान महावीर के अनुयायी आज उसी प्रकार की उदारबुद्धि से क्यों काम नहीं लेते ?

भगवान् महावीर का उपदेश प्रायः 'प्राकृत' भाषा में होता था। इसका कारण यही है कि उस जमाने में निम्न से निम्न वर्ग की आम भाषा 'प्राकृत' थी। उन सबको उपदेश देने के लिये ही साधारण बोलचाल की भाषा में हमारे धर्मग्रन्थों की रचना हुई थी।

जो पतितपावन नहीं है वह धर्म नहीं है, जिसका उपदेश प्राणी मात्र के लिये नहीं है वह देव नहीं है, जिसका

कथन सबके लिये नहीं है वह शास्त्र नहीं है। जो नीचों से घृणा करता है और उन्हें कल्याणमार्ग पर नहीं लगा सकता वह गुरु नहीं है। जैनधर्म में यह उदारता पाई जाती है इसलिए वह श्रेष्ठ है। जैनधर्म की इस उदारता को आज मूर्त रूप देने की आवश्यकता है।

卐

उदारता के उदाहरण

जैनधर्म में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जाति या वर्ण की अपेक्षा गुणों का महत्व दिया गया है। यही कारण है कि वर्ण की व्यवस्था जन्म से न मानकर कर्म से मानी गई है। यथा –

> मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
> वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥४५॥
>
> ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ।
> वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥४६॥
>
> —आदिपुराण पर्व ३८

अर्थात्—जाति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है किन्तु जीविका के भेद से वह चार भागों (वर्णों) में विभक्त हो गई है। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक द्रव्य कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय लेने से शूद्र कहे जाते हैं।

क्षत्रियाः क्षतत्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः ।
शूद्राः शिल्पादिसंबंधाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः ॥३९॥
—हरिवंशपुराण, सर्ग ९

अर्थात् दुखियों की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापार करने वाले वैश्य और शिल्पकला से सम्बन्ध रखने वाले शूद्र बनाये गये ।

इस प्रकार आजीविका—भेद से मानवों में भेद हो गया। न तो कोई ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से ही उच्च हो जाता है और न शूद्र कुल में जन्म लेने से नीच । जैन समाज के गण्यमान्य विद्वान् पं० पन्नालाल जी 'साहित्याचार्य' ने लिखा है : -

'कितने ही लोग सहसा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को उच्चगोत्री और शूद्र को नीचगोत्री कह देते हैं और फतवा दे देते हैं 'चूंकि शूद्र के नीचगोत्र का उदय रहता है अतः वह सकल व्रत ग्रहण नहीं कर सकता। आगम में नीचगोत्र का उदय पंचम गुणस्थान तक बतलाया है और सकल व्रत षष्ठम गुणस्थान के पहले नहीं हो सकता।' परन्तु इस युग में जबकि सभी वर्णों में वृत्ति-कर हो रहा है तब क्या कोई विद्वान् दृढ़ता के साथ यह कहने को तैयार है कि अमुक वर्ग अमुक वर्ण का है? जिन बङ्गाली और काश्मीरी ब्राह्मणों में एक दो नहीं, पचासों पीढियों से मांस-मछली खाने की प्रवृत्ति चल रही है उन्हें ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण उच्च गोत्री माना जाय और बुन्देलखण्ड की जिन बढ़ई, लुहार, सुनार, नाई आदि जातियों में पचासों पीढ़ियों से मांस मदिरा का सेवन नहीं किया गया हो उन्हें शूद्र वर्ण में

उत्पन्न होने से नीच गो ।। कहा जाय, यह कुछ बेतुकी सी बात लगती है। जिन लोगों में स्त्री का करा धरा होता हो वे शूद्र हैं—नीच हैं और जिनमें यह बात न हो वे त्रिवर्ण द्विज हैं-उच्च हैं यह बात भी आज जमती नहीं है क्योंकि स्पष्ट नहीं तो गुप्त रूप से यह करे धरे का प्रवृत्ति त्रिवर्णों द्विजों में भी हजारों वर्ष पहले से चली आ रही है और अब तो ब्राह्मण भी क्षत्रिय भी, तथा कोई कोई जैन भी स्पष्टरूप से करा-धरा विधवा विवाह करने लगे हैं। इन सबका क्या कहा जायगा? मेरा तो ख्याल है कि आचरण की शुद्धता और अशुद्धता के आधार पर सभी वर्णों में उच्च नीच गोत्र रह सकता है और सभी वर्ण वाले उसके आधार पर दीक्षा तथा सकल व्रत ग्रहण कर सकते हैं।"

[भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित भगवज्जिनसेनाचार्य कृत महापुराण आदिपुराण की विद्वत्त पूर्ण प्रस्तावना (पृष्ठ ६१) से]

जैनधर्म में वर्ण-विभाग करके भी गुणों की प्रतिष्ठा की गई है और जाति या वर्ण का मद करने वालों की निन्दा की गई है। तथा उन्हें दुर्गति का पात्र बताया गया है। आराधना कथा कोश में लक्ष्मीमती की कथा है। उसे अपनी ब्राह्मण जाति का बहुत अभिमान था। इसी से वह दुर्गति को प्राप्त हुई। ग्रन्थकार उपदेश देते हुए लिखते हैं—

मानतो ब्राह्मणी जाता क्रमाद्धीवरदेहजा।
जातिगर्वो न कर्तव्यस्ततः पूज्यैः प्रयत्नतः ॥४५-१६॥

अर्थात्—जाति मद के कारण एक ब्राह्मणी ने धीमर की लड़की हुई, इसलिये बुद्धिमानों को जाति का मद नहीं

करना चाहिये।

इधर तो जाति का गर्व न करने का उपदेश देकर मानवता का पाठ पढ़ाया है और उधर जाति-गर्व के कारण पतित होकर ढीमर के यहाँ उत्पन्न होने वाली लड़की का आदर्श उद्धार बताकर जैनधर्म की उदारता को और भी स्पष्ट कर दिया गया है। यथा—

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम्।
धर्ममाकर्ण्य जैनेद्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥२४॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥२५॥

—आराधना कथाकोश ४५

अर्थात्—समाधिगुप्त मुनिराज के मुख से जैनधर्म का उपदेश सुनकर वह ढीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका हो गई और शान्तिपूर्वक तप करके स्वर्ग गई।

इस प्रकार एक शूद्र (ढीमर) की कन्या मुनिराज का उपदेश सुनकर जैनियों की क्षुल्लिका-साध्वी हो जाती है! क्या यह जैनधर्म की कम उदारता है? ऐसे उदारतापूर्ण अनेक उदाहरण इस पुस्तक के अनेक प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं। कुछ ऐसी ही जैन कथाओं का सारांश उदाहरण के रूप में यहां और उपस्थित किया जा रहा है।

१—अग्निभूत—मुनि ने चाण्डाल की अंधी लड़की को श्राविका के व्रत धारण कराये। वही तीसरे भव में सुकुमाल हुई।

२–पूर्णभद्र—और मानभद्र नामक दो वैश्य पुत्रों ने एक चाण्डाल को श्रावक के व्रत ग्रहण कराये। जिससे वह चाण्डाल मरकर सोलहवें स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

३–म्लेच्छ कन्या–जरा से भगवान नेमिनाथ के चाचा वसुदेव ने विवाह किया, जिससे जरत्कुमार उत्पन्न हुआ। उसने मुनिदीक्षा ग्रहण की।

४—महाराजा श्रेणिक–बौद्ध थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिंसा करते थे मगर जब वे जैन हुये तो वे शिकार आदि का त्याग कर जैनियों के महापुरुष हो गये।

५–विद्युत् चोर—चोरों का सरदार होने पर भी जम्बू स्वामी के साथ मुनि हो गया और तप करके सर्वार्थसिद्धि को गया।

६–पापी मृगध्वज–भैंसों तक का मांस खा जाता था किन्तु वही मुनिदत्त मुनि के पास जिनदीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर जैनियों का परमात्मा (सिद्ध भगवान) बन गया। यथा:—

मुनिदत्तमुनेः पार्श्वे जैनीं दीक्षां समाश्रितः।
क्षयं नीत्वा शुक्लध्यानात् घातिकर्मचतुष्टयम्।
केवलज्ञानमुत्पाद्य सञ्जातो सुरनार्चितः॥

—आराधना कथा ५८

७–परस्त्रीसेवी का मुनिदान—राजा सुमुखवारक सेठ की पत्नी वनमाला पर मुग्ध हो गया। उसे दूतियों के द्वारा

अपने महल में बुला लिया और फिर उसे घर नहीं जाने दिया यहाँ तक कि उसे अपनी स्त्री बना कर उससे प्रगाढ़ काम सेवन करने लगा। एक दिन राजा सुमुख के मकान पर महामुनि पधारे। वे सब कुछ जानने वाले विशुद्धज्ञानी थे फिर भी उन्होंने राजा के यहां आहार लिया। राजा सुमुख और वनमाला दोनों ने मिलकर मुनिराज को आहार दिया और पुण्य-संचय किया। इसके बाद भी वे दोनों काम सेवन करते रहे। एक समय बिजली गिरने से वे मरकर विद्याधर विद्याधरी हुए। इन्हीं दोनों से 'हरि' नामक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे हरिवंश की उत्पत्ति हुई।

[-हरिवंश पुराण सर्ग १४ श्लोक ४७ से सर्ग १५ श्लोक १२ तक]

कहां तो यह उदारता कि व्यभिचारी लोग भी मुनि को दान देकर पुण्य संचय कर सकें और कहां आज तनिक से लांछन से पतित किया हुआ जैन जातिच्युत होकर जिनेन्द्र भगवान के दर्शनों को भी तरसता रहे।

८-वेश्या और वेश्यासेवी का उद्धार-हरिवंश पुराण के सर्ग २१ में चारुदत्त और वसन्तसेना का बहुत ही उदारता-पूर्ण जीवनचरित्र है। उसका कुछ सार भाग यहाँ दिया जाता है। चारुदत्त ने बाल्यावस्था में ही अणुव्रत ले लिये थे (२१-१२), फिर भी चारुदत्त अपने काका के साथ वसन्तसेना के यहाँ माता की प्रेरणा से पहुँचाया गया (२१-४०), वसन्तसेना वेश्या की माता ने चारुदत्त के हाथ में अपनी पुत्री का हाथ पकड़ा दिया (२१-५८) फिर वे दोनों मजे से संभोग-रत रहे। अन्त में वसन्तसेना की माता ने चारुदत्त को घर से

बाहर निकाल दिया (२१-७३) चारुदत्त व्यापार करने चले गये। फिर वापिस आकर घर में आनन्द से रहने लगे। वसन्तसेना वेश्या भी अपना घर छोड़कर चारुदत्त के साथ रहने लगी। उसने एक आर्यिका के पास श्राविका के व्रत ग्रहण किये इस लिये चारुदत्त ने भी उसे सहर्ष अपना लिया और उसे पत्नी बनाकर रखा (२१-१७६) बाद में वश्यासेवी चारुदत्त मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि गए और उस वेश्या को भी सद्गति प्राप्त हुई।

इस प्रकार एक वेश्यासेवी और वेश्या का भी जहाँ उद्धार हो सकता हो उस धर्म की उदारता का फिर क्या पूछना? आश्चर्य है कि चारुदत्त ने उस वेश्या को प्रेम सहित अपना कर अपने घर पर रख लिया और समाज ने कोई विरोध नहीं किया। मगर आजकल स्वार्थी लोग ऐसे पतितों को एक तो पुनः समाज में मिलाते नहीं और यदि मिलाते भी हैं तो केवल पुरुष को ! और बेचारी स्त्री को धर्माधिकारिणी मिथ्या रणी और पतिता बनाकर सदा के लिये जाति धर्म तथा समाज से निकाल देते हैं। एक से अपराध में पुरुष को जाति में मिला लेना और स्त्री को सदा के लिये पतिता बनाये रखना घोर अन्याय और निष्ठुरता है।

६-व्यभिचारिणी की सन्तान—हरिवंश पुराण के सर्ग २९ की एक कथा बहुत ही उदार है। उसका सार है— तपस्विनी ऋषिदत्ता के आश्रम में आकर राजा शीलायुध ने एकांत पाकर उससे व्यभिचार किया (३६) उसके गर्भ से ऐणी पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव-पीड़ा से ऋषिदत्ता मर गई और

सम्यक्त के प्रभाव से नागकुमारी हुई। व्यभिचारी राजा शीलायुध दिगम्बर मुनि होकर स्वर्ग गया (५७)

ऐणीपुत्र की कन्या प्रियंगुसुन्दरी को एकान्त में पाकर वसुदेव ने उसके साथ काम-क्रीड़ा की ६८ और उसे व्यभिचार जात जानकर भी अपनाया और संभोग करने के बाद सबके सामने प्रकट विवाह किया (७)

१०–मांसभक्षी की मुनिदीक्षा—सुधर्मा राजा को माँस-भक्षण का शौक था। एक दिन वह मुनि चित्ररथ के उपदेश से मांस त्याग कर तीन सौ राजाओं के साथ मुनि हो गया (हरि० ३३-१५२)

११–कुमारी कन्या की सन्तान—राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही संभोग किया जिससे कर्ण उत्पन्न हुआ।

"पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः"।

— हरि० ४५-३७

और फिर बाद में उसी से विवाह हुआ, जिससे युधिष्ठिर अर्जुन और भीम उत्पन्न होकर मोक्ष गये।

१२–चाण्डाल का उद्धार—एक चाण्डाल जैन धर्म का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया और दीनता को छोड़ कर चारों प्रकार के आहारों का परित्याग करके व्रती हो गया। वही मरकर नन्दीश्वर द्वीप में देव हुआ—

निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा त्यक्त्वाहारचतुर्विधं।
मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वरेऽमरः॥

—हरि० ४३-१५५

इस प्रकार चाण्डाल अपनी दीनता को (कि मैं नीच हूँ) छोड़कर ब्रती बन जाता है और उच्च होता है।

१३–शिकारी मुनि हागया–जंगल में शिकार खेलता हुआ और मृग का घात करते आप हुआ एक राजा मुनिराज के उपदेश से सुन मरे हाथी को धाकर तुरन्त मुनि हो जाता है।

१४–भील के श्रावक व्रत महावीर स्वामी का जीव जब भील था तब मुनिराज के उपदेश से उसने श्रावक के व्रत लेलिये और वह क्रमशः विशुद्ध होता हुआ महावीर स्वामी की पर्याय में आया।

इन थोड़े से उदाहरणों से ही जैनधर्म की उदारता का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है।

श्वे० जैन शास्त्रों में उदारता के प्रमाण

श्वेताम्बर जैनशास्त्रों में जैन धर्म की उदारता के बहुत से प्रबल प्रमाण मिलते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि जैनधर्म वास्तव में मानव मात्र को धर्म धारण करने की आज्ञा देता है। नीच पापी और अत्याचारियों को शुद्धि का भी उपाय बतलाता है और उनको शरण देता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों से कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं –

(१) मेहताय मुनि चाण्डाल थे। अन्त में वे मुनि-दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

( ) हरिकेश आप से मच्छीमार था। अन्त में वह मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष गया।

(३) अर्जुन माली ने ६ माह तक १-स्त्री और ६ पुरुषों की हत्या की, अन्त में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में उस हत्यारे को शरण मिली। वहाँ उसने मुनिदीक्षा लेली और तपस्या द्वारा कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष गया।

(४) आदिमखाँ मुसलमान जैन था। उसके बनाये हुये भजन आज भी भक्तिभाव से गाये जाते हैं।

(५) दुर्गंधा वेश्या की पुत्री थी। वही राजा श्रेणिक की पत्नी बनी। (त्रिषष्टि०)

(६) ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का जीव पूर्व भव में चाण्डाल था उसे एक मुनि ने उपदेश देकर मुनिदीक्षा दी। वह मुनि होकर द्वादशांग का ज्ञाता हुआ। (त्रिषष्टि०)

(७) कयवन्ना (कृतपुण्य) सेठ ने वेश्यापुत्री से विवाह किया। फिर भी उनके धर्मसाधन में कोई बाधा नहीं आई।

(८) चिलाती पुत्र ने एक कन्या का मस्तक काट डाला। वह चोर, दुराचारी और हत्यारा था फिर भी उसे मुनिदीक्षा दी गई। (योगशास्त्र)

(९) मथुरा में जितशत्रु राजा और काला नाम की वेश्या के संयोग से कालवेशीकुमार हुआ। इस प्रकार व्यभिचारोत्पन्न वेश्यापुत्र कालवेशीकुमार ने मुनिदीक्षा ले ली।

['मथुरा कल्प' जिनप्रभसूरिकृत और मुनि न्यायविजयजीकृत टीका]

(१०) चाण्डाली के पुत्र हरिकेशी बल ने मुनिदीक्षा ली उनकी पूजा ऋषि, ब्राह्मण, राजा और देवों ने भी की।

(उत्तराध्ययन सूत्र)

(११) मथुरा में कुबेरसेना वेश्या से कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता नामक पुत्र पुत्री हुये। दैवयोग से दोनों का विवाह हुआ। कुबेरदत्ता ने दीक्षा ले ली। उधर कुबेरदत्त ने अपनी माँ को पत्नी बना लिया। और निमित्त मिलने पर वह भी मुनि हो गया। वेश्या कुबेरसेना ने भी जैनधर्म स्वीकार किया।

(मथुरा कल्प)

(१२) मथुरा में जिनदास ने अपने दो बैलों को मरते समय णमोकार मंत्र दिया और उन बैलों ने आहार पानी का त्याग कर दिया। जिससे वे मर कर नागकुमार देव हुए।

(मथुरा कल्प)

(१३) पुष्पचूल और पुष्पचूला दोनों भाई बहिन थे। दोनों ने आपस में विवाह कर लिया। इस प्रकार वे व्यभिचारी बने। फिर भी पुष्पचूला ने दीक्षा ले ली और उसने कर्म-बंधन काट डाले।

(मथुरा कल्प)

(१४) वस्तुपाल तेजपाल प्राग्वाट जातीय असराज की पत्नी कुमारदेवी के पुत्र थे। कुमारदेवी अणहिलपट्टन की विधवा थी। असराज ने उससे पुनर्विवाह किया। इस प्रकार वस्तुपाल तेजपाल विधवा के पुत्र थे। इतने पर भी वस्तुपाल (प्राग्वाट जाति) ने विजातीय (मोढ जाति में) विवाह किया। फिर भी उनने सन् १२३० में गिरनार का संघ निकाला। उसमें १२ हजार श्वेताम्बर और ३०० दिगम्बर जैन साथ थे। उसके बाद सन् १२३० में उन्होंने आबू के जगत्प्रख्यात जैन मन्दिर बनवाये।

(१५) जाति के विषय में स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि का व्यवहार कर्मगत (आचरण से) है। ब्राह्मणत्वादि जन्मगत नहीं होवे। यथा—

कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

(उत्तराध्ययन सूत्र अ० २५)

(१६) जैनधर्म में जाति को प्रधान नहीं माना है। इसी विषय में मुनि श्री 'सन्तवाल' जी ने उत्तराध्ययन की टीका में १२ वें अध्याय के प्रारम्भ में विवेचन करते हुये लिखा है:—

"आत्मविकास में जाति-बन्धन नहीं होते। चाण्डाल भी आत्म-कल्याण के मार्ग पर चल सकता है। चाण्डाल जाति में उत्पन्न होने वाले का भी हृदय पवित्र हो सकता है। हरिकेश मुनि चाण्डाल कुलोत्पन्न होकर भी गुणों के भंडार थे। नरेन्द्र देवेन्द्र और महापुरुषों ने उनकी वन्दना की थी। वर्णव्यवस्था कर्मानुसार होती है। उसमें नीच ऊँच के भेदों को स्थान नहीं है। भगवान महावीर ने जातिवाद का खंडन करके गुणवाद का प्रसार किया था। अभेद भाव का अमृत पान कराया और दीन हीन पतित जीवों का उद्धार किया था।

प्रत्यक्ष में जातिगत कोई विशेषता मालूम नहीं होती, प्रत्युत विशेषता दिखाई देती है तप में। चाण्डाल का पुत्र हरिकेशी तप से ही अद्भुत ऐश्वर्य और ऋद्धि को प्राप्त हुआ यथाः -

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस काई।
सोवागपुत्त हरिएससाहू, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥
(उत्तराध्ययन सूत्र अ० १२)

(१७) मथुरा के यमुन राजा ने ध्यानमग्न दण्ड मुनिराज का तलवार से घात किया। बाद में उस मुनि घातकी राजा ने मुनिदीक्षा ले ली।

(१८) मथुरा के राजा जितशत्रु की वेश्या पत्नी थी उसका नाम काला था। उस वेश्या से कालवैशीकुमार हुआ। और उस वेश्यापुत्र ने युवावस्था में मुनि दीक्षा ग्रहण की।
(उत्तराध्ययन सूत्र अ० २ सू० ३)

(१९) आजीवक सम्प्रदाय के अनुयायी कुम्हार सद्दालपुत्र को स्वयं भगवान महावीर स्वामी ने श्रावक के १२ व्रत दिये और उसकी स्त्री अग्निमित्रा भी जैनधर्म में दीक्षित हुई।
(उपासगदसाओ अ० ६)

(२०) महावीर स्वामी के समय में म्लेच्छ ईरानी राजकुमार समयकुमार के मन्त्री से जैनधर्म का श्रद्धालु हुआ था। आर्द्रक नामक राजकुमार ने महावीर स्वामी के संघ में सम्मिलित होकर मुनि दीक्षा ली और वह मोक्ष गया।
(सूत्रकृतांग)

(२१) अब्दुर्रहमान फूलवाला नामक एक मुसलमान रतनगढ़िया देहली के थे। उन्होंने सम्वत् ११९० के पूर्व जैनधर्म की शरण ली थी।

(२२) कुछ ही वर्ष पूर्व श्वेताम्बराचार्य श्री० विजयेन्द्र सूरि ने अमन महिला मिस शारलोटा क्राज को जैनधर्म की

दीक्षा दी थी और उनका नाम 'सुभद्राकुमारी' रखा था। अभी भी वे जैनधर्म का पालन करती हैं और ग्वालियर स्टेट में शिक्षा विभाग के उच्च पद पर कार्य करती रहीं। वे जैनमन्दिरों में दर्शन पूजन करती हैं, और जैनों को उनके साथ खान पान आदि करने में अब कोई परहेज नहीं है।

(२३) श्वेताम्बराचार्य नेमिसूरि जी महाराज ने वर्तमान में कई शूद्रों को मुनि-दीक्षा दी है। श्वे० में अनेक साधु शूद्र जाति के अभी भी विद्यमान हैं।

(२४) श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात) के द्वारा अभी भी जैनधर्म का प्रचार हो रहा है। वहाँ हजारों पाटीदार स्त्री पुरुषों को जैनधर्म की दीक्षा दी गई है। वे सब वहाँ के जैन मन्दिरों में भक्ति-भाव से पूजा, स्वाध्याय और आत्मध्यान आदि करते हैं।

(२५) आध्यात्मिक संत पुरुष श्री कानजी स्वामी पहले प्रख्यात श्वेताम्बराचार्य थे। अब वे दिगम्बराम्नाय के सुदृढ़ श्रद्धानी हैं। उनके उपदेश से विविध जातियों के कई हजार नर-नारियों ने जैनधर्म धारण किया है। सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में जैनधर्म का उपदेश प्राप्त करने के लिये अभी भी सहस्रों नर-नारी जाते हैं और वहां किसी भी प्रकार के जातिगत भेद भाव के बिना, सभी लोग श्री कानजी स्वामी के प्रवचन सुनते, और जिन मन्दिर में धर्माराधन करते हैं।

इस प्रकार श्वेताम्बर शास्त्रों में और उनके व्यवहार में जैनधर्म की उदारता के अनेक प्रमाण मिलते हैं। मात्र इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म परम उदार है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो क्या चाण्डाल अछूत विदेशी म्लेच्छ, मुसलमान आदि भी जैनधर्म धारण करके स्वपर कल्याण कर सकते हैं। धर्म के लिए जाति का विचार नहीं है। उसके लिए आत्मशुद्धि की ही आवश्यकता है। एक जैनाचार्य ने क्या ही अच्छा कहा है:

> एहु धम्मु जो आयरइ, बंभण सुद्दवि कोइ ।
> सो सावहु, कि सावयहं अण्णु कि सिरि मणि होइ ॥
>
> —श्री देवसेनाचार्य

अर्थात् इस जैनधर्म का जो भी आचरण करता है वह चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, या कोई भी हो वही श्रावक (जैन) है। क्योंकि श्रावक के सिर पर कोई मणि तो लगा नहीं रहता !

कितना अच्छी उदारता है ? कैसा सुन्दर और स्पष्ट कथन है ? कैसी बढ़िया उक्ति है ? इस प्रकार में जो व्यभिचारी अनाचारी नर-नारियों के उदाहरण दिये गये हैं, उनसे केवल यही शिक्षा ग्रहण करना है कि अनाचारी व्यक्ति भी जैनधर्म धारण करके आत्मकल्याण कर सकते हैं।

जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार

इस पुस्तक में अभी तक ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा चुके हैं जिनसे ज्ञात होता है कि घोर से घोर पापी, नीच से नीच आचरण वाले और चाण्डालादिक दीन हीन शूद्र भी जैनधर्म की शरण लेकर पवित्र हो सकते हैं। जैनधर्म में सब को पचाने की शक्ति है। जहाँ धर्म की अपेक्षा सदाचार को

विशेष महत्व दिया गया है वहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादिक का पक्षपात कैसे हो सकता है ? इसीलिए कहना न होगा कि जैनधर्म में शूद्रों को भी वही अधिकार हैं जो ब्राह्मणादि को हो सकते है । शूद्र जिनमन्दिर में जा सकते हैं, जिनपूजा कर सकते हैं जिनबिम्ब का स्पर्श कर सकते हैं, उत्कृष्ट श्रावक तथा मुनि के व्रत ले सकते हैं । नीचे लिखी कुछ कथाओं से यह बात विशेषरूप से स्पष्ट हो जाती है । इन बातों से व्यर्थ ही न भड़क कर इन शास्त्रीय प्रमाणों पर विचार कीजिये ।

(१) श्रेणिक चरित्र में तीन शूद्र कन्याओं का विस्तार से वर्णन है । उनके घर में मुर्गियाँ पाली जाती थीं । वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थीं । उनका रहन सहन आदि बहुत ही खराब था । एक बार वे मुनिराज के पास पहुंची और उनके उपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने उद्धार का मार्ग पूछा । मुनिराज ने उन्हें 'लब्धि विधान व्रत' करने को कहा । इस व्रत में भगवान जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का प्रक्षाल-पूजादि, मुनि और श्रावकों को दान तथा अनेक धार्मिक विधियां (उपवासादि) करनी होती है । उन कन्याओं ने यह व्रत शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार किया । यथा -

तिस्रोपि तद्व्रतं चक्रुरुद्यापनक्रियायुतम् ।
मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां सहायतः ॥५७॥

श्रावकव्रतसंयुक्ता बभूवुस्ताश्च कन्यकाः ।
क्षमादिव्रतसंकीर्णाः शीलांगपरिभूषिताः ॥५८॥

> कियत्काले गते कन्या आगत्य जिनमन्दिरम् ।
> महर्या महता चक्रुर्जिनानां पूजनं मुदा ॥ ५९ ॥
> ततः आयुःक्षये कन्या कृत्वा सन्यासमुत्तमाम् ।
> अर्हद्बीजाक्षरं स्मृत्वा गुरुपादं प्रणम्य च ॥ ६० ॥
> पंचमे दिवि संजाता महादेवा स्फुरत्प्रभा ।
> संछित्वा रमणीलिंगं मानसं च रसान्वितं ॥६१॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार

अर्थात्—उन तीनों शूद्र कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की सहायता से उद्यापन क्रिया सहित व्रतविधान समाप्त किया तथा उन कन्याओं ने श्रावक के व्रत धारण करके क्षमादि दश धर्म और शीलव्रत धारण किया। कुछ समय बाद उन शूद्र कन्याओं ने जैन मन्दिर में जाकर मन वचन काय की शुद्धतापूर्वक जिनेन्द्र भगवान की बड़ी पूजा की। फिर आयु पूर्ण होने पर वे कन्यायें समाधिमरण धारण करके अर्हन्त देव के बीजाक्षरों को स्मरण करती हुई और मुनिराज के चरणों को नमस्कार करके स्त्रीपर्याय छेद कर पांचवें स्वर्ग में देव हुईं।

इस कथाभाग से जैनधर्म की उदारता अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहाँ आज के दुराग्रही लोग शूद्रों को पूजा प्रक्षाल का अनधिकारी बतलाते हैं वहाँ मुर्गों मुर्गियों का पालन करने वाली शूद्र जाति की कन्यायें जिनमन्दिर में जाकर महापूजा करती हैं और अपना भव सुधार कर देव हो जाती हैं। शूद्रों की कन्याओं का समाधिमरण धारण करना, बीजाक्षरों का जाप

करना आदि भी जैनधर्म की उदारता को उद्योतित करता है।

इसके अतिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिनपूजा का विधान बताने वाली (११३ वीं) कथा भी आराधना कथाकोश में है। उसका सार यह है—

२) धनदत्त नामक एक ग्वाला को गायें चराते समय एक तालाब में सुन्दर कमल मिल गया। ग्वाला ने जिनमन्दिर में जाकर राजा के द्वारा सुगुप्त मुनि से पूछा कि 'सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को यह कमल चढ़ाना है। आप बताइये कि संसार में सर्वश्रेष्ठ कौन है?' मुनिराज ने जिनेन्द्र भगवान को सर्वश्रेष्ठ बतलाया। तदनुसार धनदत्त ग्वाला, राजा और नागरिकों के साथ जिन मन्दिर में गया और उसने वह कमल जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति (चरणों पर अपने हाथों से भक्तिपूर्वक चढ़ा दिया। यथा—

तदा गोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः ।
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्म गृहाणेदमिति स्फुटम् ॥१५॥
उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा सुपंकजम् ।
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्मदम् ॥१६॥

इस प्रकार एक शूद्र ग्वाला के द्वारा जिन-प्रतिमा के चरणों पर कमल का चढ़ाया जाना शूद्रों के पूजाधिकार को स्पष्ट सूचित करता है। ग्रन्थकार ने भी ऐसे मुग्धजनों के ऐसे कार्य को सुखकारी बतलाया है।

इसी प्रकार और भी अनेक कथायें शास्त्रों में भरी पड़ी हैं, जिन में शूद्रों को वही अधिकार दिये गये हैं जो अन्य वर्णों को हैं। यथा—

(३) सोमदत्त माली प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की ना करता था, और चम्पानगर का एक ग्वाला मुनिराज से मोकार मंत्र सीखकर स्वर्ग गया।

(४) अनगसेना वेश्या अपने प्रेमी धनकीर्ति सेठ के मुनि जाने पर स्वयं भी दीक्षित हो गई और स्वर्ग गई।

(५) एक ढीमर (कहार) की पुत्री पियगुलना सम्यक्त्व दृढ़ थी। उसने एक साधु के पाखण्ड की धज्जियां उड़ाई र फिर उसे भी जैन बनाया।

(६) काणा नाम की ढीमर की लड़की के क्षुल्लिका होने कथा पहले ही लिख आये हैं।

(७) देविल कुमार ने एक धर्मशाला बनवाई। वह जैनधर्म मानता था। उसने अपनी उस धर्मशाला में दिगम्बर राज को ठहराया और पुण्य के प्रताप से वह देव हुआ।

(८) कामेक वेश्या जैनधर्म की परम उपासिका थी। ने जिन-भवन को दान दिया था। उसमें शूद्र जाति के मुनि ठहरते थे।

(९) तेली जाति की एक महिला मानकब्बे जैनधर्म पर र रखती थी। आर्यिका श्रीमति की वह वहशिष्या थी। उसने जिन मन्दिर भी बनवाया था।

इन उदाहरणों से शूद्रों के अधिकारों का कुछ भास हो ता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में तो चाण्डाल जैसे अस्पृश्य जाने वाले शूद्रों को भी दीक्षा देने का विधान है।

(१०) चित्त और सम्भूति नामक चाण्डालपुत्र जब देखो

के तिरस्कार से दुखी होकर आत्मघात करना चाहते थे तब उन्हें जैन दीक्षा सहायक हुई और जैनों ने उन्हें अपनाया।

(११) हरिकेशी चाण्डाल भी जब वैदिकों के द्वारा तिरस्कृत हुआ तब उसने जैनधर्म की शरण ली और जैन दीक्षा लेकर असाधारण महात्मा बन गया।

इस प्रकार जिस जैनधर्म ने वैदिकों के अत्याचारों से पीड़ित प्राणियों को शरण देकर पवित्र बनाया, उन्हें उच्च स्थान दिया और जाति-मद का मर्दन किया, वही पतित पावन जैनधर्म आज के स्वार्थी संकुचितदृष्टि एवं जातिमदमत्त लोगों के हाथों में आकर बदनाम हो रहा है! खेद है कि हम प्रतिदिन शास्त्रों का स्वाध्याय करते हुए भी, उनकी कथाओं पर, उनके सिद्धान्तों पर और उनकी अन्तरंग भावना पर ध्यान नहीं देते।

जैनाचार्यों ने प्रत्येक शूद्र की शुद्धि के लिए तीन बातें मुख्य बताई हैं -

१—मांस मदिरादि का त्याग करके शुद्ध आचारवान हो
२—आसन वसन पवित्र हो ३ स्नानादि से शरीर शुद्ध हो।

इसी को श्री सोमदेवाचार्य ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार कहा है—

"आचारानवद्यत्वं शुचिरुपस्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान।"

इस प्रकार तीन तरह की शुद्धियां होने पर शूद्र भी मा... होने के योग्य हो जाता है। पं० आशाधर जी ने लिखा है

जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धो ह्यात्मास्ति धर्मभाक् ।

अर्थात्—जाति से हीन या नीच होने पर भी कालादिक लब्धि-समयानुकूलता मिलने पर वह जैनधर्म का अधिकारी हो जाता है।

श्री समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार तो सम्यग्दृष्टि चाण्डाल भी देव माना गया है पूज्य माना गया है और गणधरादि द्वारा प्रशंसनीय कहा गया है। यथा—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम् ॥२८॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

शूद्रों की तो बात ही क्या जैनशास्त्रों में महा-म्लेच्छों तक को मुनि होने का अधिकार दिया गया है। जो मुनि हो सकता है, उसके फिर कौन से अधिकार शेष रह जाते हैं? लब्धिसार ग्रंथ में म्लेच्छ को भी मुनि होने का विधान इस प्रकार किया है—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेय ।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥१६३॥

अर्थ—प्रतिपाद्य स्थानों में से प्रथम आर्य खण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से संयमी हुआ, उसका जघन्य स्थान है। उसके बाद असंख्यात लोकमात्र षट् स्थान के ऊपर म्लेच्छ-खण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से सकल संयमी (मुनि) हुआ उसका जघन्य स्थान है। उसके ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य

देश संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है। उसके बाद आर्यखण्ड का मनुष्य देश-संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है।

लब्धिसार की इसी १९३ वीं गाथा की संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यं। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसंबंधानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात्। तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।"

अर्थात् कोई यों कह सकता है कि म्लेच्छ-भूमिज मनुष्य मुनि कैसे हो सकते हैं? तो यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि-दिग्विजय के समय चक्रवर्ती के साथ आर्य खण्ड में आये हुये म्लेच्छ राजाओं को संयम की प्राप्ति में कोई विरोध नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, वे म्लेच्छभूमि से आर्यखंड में आकर चक्रवर्ती आदि से वैवाहिक संबंध से संबंधित होकर भी मुनि बन सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चक्रवर्ती के द्वारा विवाही गई म्लेच्छ-कन्या से उत्पन्न हुई संतान माता की अपेक्षा से म्लेच्छ कही जा सकती है, और उनके मुनि होने में किसी भी प्रकार का कोई निषेध नहीं हो सकता।

इसी बात को सिद्धान्तराज श्रीजयधवल ग्रन्थ में भी लिखा है—

'जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवोत्तिणा सकणिज्जं। दिसाविजयपयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सह मज्झिमखण्डमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टि आदिहिं सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए विरोहाभावादो। अहवा तत्तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीह विवक्षिता ततो न किंचिद्विप्रतिषिद्धं। तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावादिति।'

—जयधवल आरा की प्रति पृ० ८२७-२८

इन टीकाओं से दो बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। एक तो म्लेच्छ लोग मुनि दीक्षा तक ले सकते हैं और दूसरे म्लेच्छ कन्या से विवाह करने पर भी कोई धर्म कर्म की हानि नहीं हो सकती, प्रत्युत उस म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान भी उतनी ही धर्मादि की अधिकारिणी होती है जितनी कि सजातीय कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान।

प्रवचनसार की जयसेनाचार्य कृत टीका में भी सत् शूद्र को जिन-दीक्षा लेने का स्पष्ट विधान है। यथा—

एवंगुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्य सच्छूद्राद्यपि'।

और भी इसी प्रकार के अनेक कथन जैन शास्त्रों में पाये जाते हैं जो जैनधर्म की उदारता के द्योतक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक दशा में धर्म-सेवन करने का अधिकार है। 'हरिवंशपुराण' के २६ वें सर्ग के श्लोक १४ से २२ तक का पठन करके पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि जैनधर्म ने कैसे कैसे अस्पृश्य शूद्र समान व्यक्तियों को भी जिन-मन्दिर में जाकर धर्मसेवन का अधिकार दिया है। यह

कथन इस प्रकार है कि वसुदेव अपनी प्रियतमा मदनवेगा के साथ सिद्धकूट चैत्यालय की वंदना करने गये। वहाँ पर चित्र विचित्र वेषधारी लोगों को बैठा देखकर कुमार ने रानी मदनवेगा से उनकी जाति जानने के संबंध में पूछा। तब मदनवेगा ने कहा —

मैं इनमें से इन मातंग जाति के विद्याधरों का वर्णन करती हूं। नील मेघ के समान श्याम नीली माला धारण किये मातंगस्तम्भ के सहारे बैठे हुये ये मातंग जाति के विद्याधर हैं। ॥१५॥ मुर्दों की हड्डियों के भूषणों से युक्त राख के लपेटने से मैले श्मशान स्तम्भ के सहारे बैठे हुये वह श्मशान जाति के विद्याधर है ॥१६॥ वैडूर्य मणि के समान नीले नीले वस्त्रों को धारण किये पाण्डुर स्तंभ के सहारे बैठे हुये पाण्डुक जाति के विद्याधर हैं ॥१७॥ काले काले मृगचर्मों को ओढ़े, काले चमड़े के वस्त्र और मालाओं को धारण किए हुए कालस्तम्भ का आश्रय लेकर बैठे हुये ये कालश्वपाक जाति के विद्याधर हैं ॥१८॥

इससे सिद्ध होता है कि रुण्ड मुंड को गले में डाले हुये, हड्डियों के आभूषण पहिने हुए और चमड़े के वस्त्र चढ़ाये हुए लोग भी सिद्धकूट जिन चैत्यालय के दर्शन करते थे। और वहाँ बैठकर उपासना करते थे।

हमें इन उदाहरणों से कुछ सीखना चाहिये और बिना किसी भेद भाव के सब को जैनधर्म की उपासना करने देना चाहिये।

जैनधर्म में स्त्रियों के अधिकार

जैनधर्म की सबसे बड़ी उदारता यह है कि पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी तमाम धार्मिक अधिकार दिये गये हैं। जिस प्रकार पुरुष पूजा प्रक्षाल कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। यदि पुरुष श्रावक के उच्च व्रतों का पालन कर सकता है तो स्त्रियाँ भी उच्च श्राविका हो सकती हैं। यदि पुरुष ऊँचे से ऊँचे धर्मग्रन्थों के पाठी हो सकते हैं तो स्त्रियों को भी यही अधिकार है। यदि पुरुष मुनि हो सकता है तो स्त्रियाँ भी आर्यिका होकर पंच महाव्रत धारण कर सकती हैं।

धार्मिक अधिकारों की भाँति सामाजिक अधिकार भी स्त्रियों के लिये समान ही हैं। यह बात दूसरी है कि वर्तमान में वैदिक धर्म आदि के प्रभाव से जैनसमाज अपने कर्तव्यों को और धर्म की आज्ञाओं को भूल गई है। हिन्दू शास्त्रानुसार सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र तो होता है किन्तु पुत्रियाँ उसकी अधिकारिणी नहीं मानी जातीं।

इस सम्बन्ध में श्रीमज्जिनसेनाचार्य ने अपने आदिपुराण (पर्व ३८) में स्पष्ट लिखा है —

"पुत्र्यश्च संविभागार्हाः सम पुत्रैः समांशकैः" ॥१५४॥

अर्थात् पुत्रों की भाँति पुत्रियाँ भी सम्पत्ति की बराबर बराबर भाग की अधिकारिणी हैं।

इसी प्रकार जैन कानून के अनुसार स्त्रियों को, विधवाओं को या कन्याओं को पुरुष के समान ही सब प्रकार के अधिकार हैं।

(विशेष जानकारी के लिये विद्यावारिधि जैन दर्शन दिवाकर बैरिस्टर चम्पतराय जैन कृत 'जैनलॉ' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।)

जैन शास्त्रों में स्त्री-सम्मान के भी अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। आजकल मूढ़ जन स्त्रियों को पैर की जूती या दासी समझते हैं, तब जैन राजा राजसभा में अपनी रानियों का उठकर सम्मान करते थे और अपना अर्धासन उन्हें बैठने को देते थे। भगवान महावीर की माता महारानी प्रियकारिणी जब अपने स्वप्नों का फल पूछने महाराजा सिद्धार्थ के पास गई तब महाराजा ने अपनी धर्मपत्नी को आधा आसन दिया, महारानी ने वहाँ बैठकर अपने स्वप्नों का वर्णन किया। यथा—

"संप्राप्तार्द्धासना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत् ॥"

—उत्तरपुराण।

इसी प्रकार महारानियों का राजसभाओं में जाने और वहाँ पर सम्मान प्राप्त करने के अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं। जब कि वैदिक ग्रन्थ स्त्रियों को धर्मग्रन्थों के अध्ययन करने का निषेध करते हुए लिखते हैं कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" तब जैनग्रंथ स्त्रियों को ग्यारह अंग के पठन पाठन करने का अधिकार देते हैं। यथा—

द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी ।
एकादशांगभृज्जाताऽऽर्यिकापि सुलोचना ॥५२॥

हरिवंशपुराण सर्ग १२।

अर्थात् जयकुमार भगवान का द्वादशांगधारी गणधर हुआ और सुलोचना ग्यारह अंग की धारक आर्यिका हुई।

इसी प्रकार स्त्रियां जिनमन्दिरों में जाकर के साथ ही जिनप्रतिमा का पूजा-प्रक्षाल भी किया करती थीं। अंजना सुन्दरी ने अपनी सखी वसन्तमाला के साथ वन में रहते हुये गुफा में विराजमान जिनमूर्ति का पूजन प्रक्षाल किया था। मदनवेगा ने वसुदेव के साथ सिद्धकूट चैत्यालय में जिन-पूजा की थी। मैनासुन्दरी प्रति दिन प्रतिमा का प्रक्षाल करती थी और अपने पति श्रीपाल राजा को गंधोदक लगाती थी। इसी प्रकार स्त्रियों के द्वारा पूजा-प्रक्षाल किये जाने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

हर्ष का विषय है कि आज भी जैन समाज में स्त्रियाँ भगवान का प्रक्षाल पूजन करती हैं। कहीं कहीं रूढ़िप्रिय लोग उन्हें इस धर्मकार्य से रोकते भी हैं और उनकी बड़ी कड़ी आलोचना करते हैं। उन्हें यह सोचना चाहिये कि जो आर्यिका होने का अधिकार रखती है वह पूजा प्रक्षाल न कर सके यह कैसी विचित्र बात है? पूजा प्रक्षाल तो आरम्भ का [illegible] है यह धर्म-पथ का [illegible] संसार [illegible] में ही चक्कर लगाना पड़ता है जब कि आर्यिका होना संवर और निर्जरा का कारण है, जिससे क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अब विचार कीजिये कि एक स्त्री मोक्ष के कारणभूत संवर और निर्जरा करने वाले कार्य तो कर सकती है किन्तु संसार के कारणभूत बंधकर्ता पूजन प्रक्षाल आदि कार्य नहीं कर सकती ! यह कैसे स्वीकार किया जाय ?

जैनधर्म सदा से उदार रहा है, उसे स्त्री-पुरुष या ब्राह्मण शूद्र का लिंग-भेद या वर्ण-भेद-जनित कोई पक्षपात नहीं था। हाँ; कुछ ऐसे दुराग्रही व्यक्ति हो गये हैं जिन्होंने ऐसे पक्षपाती कथन करके जैनधर्म को कलंकित किया है। इसी से खेदखिन्न होकर आचार्यकल्प पंडितप्रवर टोडरमल जी ने लिखा था—

'बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है। अर तिनको जिन वचन ठहरावे हैं। तिनकौं जैनमत का शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिक तैं परीक्षा करि विरुद्ध अर्थ को मिथ्या जानना।"

—मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३०७।

तात्पर्य यह है कि जिन ग्रन्थों में जैनधर्म की उदारता के विरुद्ध कथन है, उन्हें जैन ग्रंथ कहे जाने पर भी मिथ्या मानना चाहिये। कारण कि कितने ही पक्षपाती लोग अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होकर स्त्रियों के अधिकारों को तथा जैनधर्म की उदारता को कुचलते हुये भी अपने को निष्पक्ष मानकर ग्रंथकार बन बैठे हैं। जहाँ शूद्र कन्यायें भी जिनपूजा और प्रतिमा प्रक्षाल कर सकती हैं। (देखो गौतमचरित्र तीसरा अधिकार) वहां स्त्रियों को पूजाप्रक्षाल का अनधिकारी बताना घोर अज्ञान है। स्त्रियां पूजा प्रक्षाल ही नहीं करती थीं, किन्तु दान भी देती थीं। यथा—

श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोजसपर्यायां सुमानसा ।
शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा ॥८६॥

ज्ञानधनाय कांताय शुद्धचारित्रधारिणे ।
मुनीन्द्राय शुभाहारं ददौ पापविनाशनम् ॥८७॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार ।

अर्थात्—स्थण्डिला नाम की ब्राह्मणी जिन भगवान की पूजा में अपना चित्त लगाती थी और इन्द्राणी के समान जैन धर्म में तत्पर हो गई थी। उस समय वह ब्राह्मणी सम्यग्ज्ञानी शुद्ध चारित्रधारी उत्तम मुनियों को पापनाशक शुभ आहार देती थी।

इसी प्रकार जैन शास्त्रों में स्त्रियों को धार्मिक स्वतन्त्रता के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

जहां तुलसीदास जी ने लिख दिया है—

ढोर गवार शूद्र अरु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

वहां जैनधर्म ने स्त्रियों की प्रतिष्ठा करना बताया है सम्मान करना सिखाया है और उन्हें समान अधिकार दिये हैं। जहां वैदिक ग्रन्थों में स्त्रियों को वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं है (स्त्री शूद्रौ नाऽधीयाताम्) वहां जैनियों के प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ ने स्वयं अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों को पढ़ाया। उन्हें स्त्री जाति के प्रति बहुत सम्मान था। पुत्रियों को पढ़ने के लिये उन्होंने कहा था:—

इदं वपुर्वयश्चेदमिदं शीलमनीदृशं ।
विद्यया चेद्विभूष्येत सफलं जन्म वामिदं ॥९७॥

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः ।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं ॥९८॥

तद्विद्या ग्रहणे यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवां ।
तत्संग्रहणकालोऽयं युवयोर्वर्ततेऽधुना ॥१०२॥

आदिपुराण पर्व १६।

अर्थात्–पुत्रियो ! यदि तुम्हारा यह शरीर, अवस्था और अनुपम शील विद्या से विभूषित किया जावे तो तुम दोनों का जन्म सफल हो सकता है। संसार में विद्यावान् पुरुष विद्वानों के द्वारा मान्य होता है। अगर नारी पढ़ी लिखी--विद्यावती हो तो वह स्त्रियों में प्रधान गिनी जाती है। इसलिये पुत्रियो ! तुम भी विद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करो। तुम दोनों को विद्या ग्रहण करने का यही समय है।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रति सद्भाव रखने वाले भगवान् आदिनाथ ने विधिपूर्वक स्वयं ही पुत्रियों को पढ़ाना प्रारंभ किया।

खेद है कि उन्हीं के अनुयायी कहे जाने वाले कुछ लोग स्त्रियों को विद्याध्ययन, पूजा प्रक्षाल आदि का अनधिकारी बताकर उन्हें प्रक्षाल-पूजा करने से आज भी रोकते हैं। और कहीं कहीं स्त्रियों को पढ़ाना अभी भी अनुचित माना जाता है! स्त्रियों को मूर्ख रख कर स्वार्थी पुरुषों ने उनके साथ पशु तुल्य व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया और मन माने ग्रंथ बनाकर

उनको भर पेट निन्दा कर-डाली। एक स्थान पर नारी निन्दा करते हुये एक विद्वान (?) ने लिखा है

आपदामकरो नारी नारी नरकवर्तिनी।
विनाशकारण नारी नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥

जिस प्रकार स्वार्थी पुरुष स्त्रियों के प्रति ऐसे निन्दा सूचक श्लोक रच सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी यदि ग्रन्थरचना करतीं तो वे भी यों लिख देतीं कि—

पुरुषो विपदां खानिः पुमान् नरकपद्धतिः।
पुरुषः पापानां मूल पुमान् प्रत्यक्षराक्षस ॥

कुछ जैन ग्रन्थकारों ने भी स्त्रियों के प्रति अत्यन्त कटु और अशोभन बातें लिख दी हैं। कहीं उन्हें विष बेल लिखा है तो कहीं जहरीली नागिन लिख डाला है। कहीं विष बुझी कटारी लिखा है तो कहीं दुर्गुणों की खान लिख दिया! मानो इसी के उत्तर-स्वरूप एक वर्तमान कवि ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं—

वीर, बुद्ध अरु राम कृष्ण से अनुपम ज्ञानी।
तिलक गोखले गांधी से अद्भुत गुण खानी॥
पुरुष जाति है गर्व कर रही जिन के ऊपर।
नारि जाति थी प्रथम शिक्षिका उनकी भूपर।
पकड़ पकड़ उंगली हमने चलना सिखलाया।
मधुर बोलना और प्रेम करना सिखलाया॥
राष्ट्रभक्ति देश प्यार मरना सिखलाया।
व्याप्त हमारी हुई स्याग सब भू पर माया॥

पुरुष वर्ग खेला गोदी में सतत हमारी।
भले बना हो सम्प्रति हम पर अत्याचारी॥
किन्तु यही सन्तोष हटीं नहि हम निज प्रण से।
पुरुष जाति क्या उऋण हो सकेगी इस ऋण से॥

भगवान् महावीर के शासन में महिलाओं के लिये बहुत उच्च स्थान है। महावीर स्वामी ने स्वयं अनेक महिलाओं का उद्धार किया था। चन्दना सती को एक विद्याधर उठा ले गया था, वहाँ से वह भीलों के पंजे में फँस गई। जब वह जैसे तैसे छूट कर आई तो स्वार्थी समाज ने उसे शंका की दृष्टि से देखा। एक जगह उसे दासी के स्थान पर दीनतापूर्ण स्थान मिला। उसे सब तिरस्कृत करते थे। ऐसी स्थिति में भी भगवान् महावीर ने उसके हाथ से आहार ग्रहण किया और वह भगवान् महावीर के संघ में सर्वश्रेष्ठ आर्यिका हो गई।

इसी से सिद्ध है कि जैन धर्म में महिलाओं को उतना ही उच्च स्थान प्राप्त है जितना कि पुरुषों को।

वैवाहिक उदारता

जैनधर्म की सबसे अधिक प्रशंसनीय उदारता विवाह संबंधी है। यहाँ वर्णादि का विचार न करके गुणवान वर-कन्या से संबंध करने की स्पष्ट आज्ञा है। हरिवंशपुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि पहले विजातीय विवाह होते थे असवर्ण विवाह होते थे सगोत्र विवाह भी होते थे, स्वयंवर होता था व्यभिचारजात पुरुषों से विवाह होते थे म्लेच्छों से विवाह होते थे वेश्याओं से विवाह होते थे यहाँ तक कि कुटुम्ब में भी विवाह हो जाते थे। फिर भी ऐसे विवाह करने वालों का न तो मन्दिर बन्द होता था न वे जाति बिरादरी से खारिज किये जाते थे और न उन्हें कोई घृणा की दृष्टि से देखता था*।

खेद है कि वर्तमान में कुछ दुराग्रही लोग कल्पित उप जातियों—खण्डेलवाल परवार, गोलालारे, गोलापूर्व खण्डवाल पद्मावती पुरवाल, हूमड़ आदि में भी परस्पर विवाह करने से धर्म को बिगड़ता हुआ देखने लगे हैं।

जैन शास्त्रों में वैवाहिक उदारता के सैकड़ों स्पष्ट प्रमाण पाये जाते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्य ने आदिपुराण में लिखा है—

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत् स्वां ते च राजन्याः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥

---

*इस विषय की विशेष जानकारी के लिये लेखक की 'विजातीय विवाह मीमांसा' देखिये।

अर्थात् - शूद्र को शूद्र की कन्या से विवाह करना चाहिये, वैश्य वैश्य की तथा शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्ण की तथा वैश्य और शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की तथा शेष तीन वर्ण की कन्याओं से भी विवाह कर सकता है।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजातियों में (अन्तर्जातीय) विवाह करने में भी धर्म-कर्म की हानि समझते हैं उनकी बुद्धि के लिये क्या कहा जाय ? अदीर्घदर्शी, अविचारी एवं हठग्राही लोगों को जाति के झूठे अभिमान के सामने आगम और युक्तियाँ भी व्यर्थ दिखाई देती हैं।

जैन धर्म में जाति की कोई महत्ता नहीं है। जैन शास्त्रों ने जाति-गत थोथेपन के संबन्ध में स्पष्ट घोषित किया है कि-

> अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
> कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना॥

अर्थात्—इस अनादि संसार में कामदेव सदा से दुर्निवार चला आ रहा है। तथा कुल का मूल कामिनी है। तब इसके आधार पर जाति-कल्पना करना कहाँ तक ठीक है ?

तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार कामदेव की चपेट में आ गया हो। तब जाति को लेकर उच्चता-नीचता का अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण के पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही है।

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात् ॥४६१॥

अर्थात्—इस शरीर में वर्ण या आकार से कुछ भेद दिखाई नहीं देता। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्यों में शूद्रों के द्वारा भी गर्भाधान की प्रवृत्ति देखी जाती है। तब कोई अपने उत्तम या उच्च वर्ण का अभिमान कैसे कर सकता है? ।

सच तो यह है कि जो वर्तमान में सदाचारी है वही उच्च है और जो दुराचारी है वह नीच है।

इस प्रकार जाति और वर्ण की कल्पना को महत्व न देकर जैनाचार्यों ने आचरण पर जोर दिया है। जैनधर्म की इस उदारता को ठोकर मार कर जो लोग अन्तर्जातीय विवाह का भी निषेध करते हैं उनकी दयनीय बुद्धि पर विचार न करके जैन समाज को अपना क्षेत्र विस्तृत उदार एवं अनुकूल बनाना चाहिये।

जैन शास्त्रों को कथा ग्रंथों को या प्रथमानुयोग को उठाकर देखिये उनमें आपको पद पद पर वैवाहिक उदारता दिखाई देगी। पहले स्वयम्वर प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुल का विचार करके गुण का ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे या बड़े कुल वाले को उसके गुणों पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश पुराण में इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचिरं स्वयम्वरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयम्वरे ॥११-७१॥

अर्थात्—स्वयम्वरगत कन्या अपने पसन्द वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयम्वर में कुलीनता अकुलीनता का कोई नियम नहीं होता।

जहां कुलीन अकुलीन का विचार न करके इतनी वैवाहिक उदारता बताई गई है वहां अन्तर्जातीय विवाह की कौन सी बड़ी बात है? इसमें तो एक ही जाति, एक ही धर्म, और एक ही आचार-विचार वालों में संबंध करना है।

卐

जैन शास्त्रों में विजातीय विवाह के प्रमाण

१—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने ब्राह्मण कन्या नन्दश्री से विवाह किया था और उससे अभयकुमार पुत्र उत्पन्न हुआ था। (भवतो विप्रकन्यायां सुतोऽभूदभयाह्वयः) बाद में विजातीय माता पिता से उत्पन्न अभयकुमार मोक्ष गया। (उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक ४२३ से २६ तक)

२—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय ने अपनी पुत्री धन्यकुमार (वैश्य) को दी थी। (पुण्याश्रव कथाकोष)

३ राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिंकर (वैश्य) को दी थी। इनके ३६ वैश्य पत्नियां थीं और एक पत्नी राजकुमारी वसुन्धरा भी क्षत्रिय थी। फिर भी वे मोक्ष गये। (उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४७)

४—कुबेरप्रिय सेठ (वैश्य) ने अपनी पुत्री क्षत्रिय कुमार को विवाही थी।

५—क्षत्रिय राजा लोकपाल की रानी वैश्य थी।

६—भविष्यदत्त (वैश्य) ने अरिंजय (क्षत्रिय) राजा की पुत्री भविष्यानुरूपा से विवाह किया था तथा हस्तिनापुर के राजा भूपाल की कन्या स्वरूपा (क्षत्रिया) को भी विवाहा था। (पुण्याश्रव कथा०)

७—भगवान नेमिनाथ के काका वसुदेव (क्षत्रिय) ने म्लेच्छ कन्या जरा से विवाह किया था। उससे जरत्कुमार उत्पन्न हुआ जो मोक्ष गया। (हरिवंशपुराण)

८—चारुदत्त (वैश्य) की पुत्री गंधर्वसेना वसुदेव (क्षत्रिय) को विवाही थी। (हरि०)

९—उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीव ने भी अपनी दो कन्यायें वसुदेवकुमार (क्षत्रिय) को विवाही थीं। (हरि०)

१०—ब्राह्मण कुल में क्षत्रिय माता से उत्पन्न हुई कन्या सोमश्री को वसुदेव ने विवाहा था। (हरिवंशपुराण सर्ग २१ श्लोक ४९-५१)

११—सेठ कामदत्त (वैश्य) ने अपनी पुत्री बन्धुमती का विवाह वसुदेव (क्षत्रिय) से किया था। (हरि०)

१२—महाराजा उपश्रेणिक (क्षत्रिय) ने भील कन्या तिलकवती से विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र चिलाती राज्याधिकारी हुआ। (श्रेणिकचरित)

१३—जयकुमार का सुलोचना से विवाह हुआ था। कि इन दोनों की एक जाति नहीं थी।

१४—जीवंधर कुमार वैश्य पुत्र कहे जाते थे। उनने क्षत्रि विद्याधर गरुड़वेग की कन्या गंधर्वदत्ता को विवाहा था। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-४४)

जीवंधरकुमार वैश्य-पुत्र के नाम से ही प्रसिद्ध थे। क्यों कि वे जन्मकाल से ही वैश्य सेठ गंधोत्कट के यहां पले थे और उन्हीं के पुत्र कहे जाते थे। विजातीय विवाह के विरोधियों का कहना है कि कुछ भी हो, किन्तु जीवंधरकुमार थे तो क्षत्रिय पुत्र ही। उन पण्डितों की इस बात को मानने में भी हमें कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि फिर भी उनके विजातीय विवाह की सिद्धि हो ही जाती है। यथा—

जीवंधरकुमार क्षत्रिय थे उनने वैश्रवणदत्त वैश्य की पुत्री सुरमंजरी से विवाह किया। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ३४७ और ३७२) इसी प्रकार कुमारदत्त वैश्य की कन्या गुणमाला का भी जीवंधर स्वामी के साथ विवाह हुआ था (उत्तर० पर्व ७५) इसके) अतिरिक्त जीवंधर ने धनपति (क्षत्रिय) राजा की कन्या पद्मोत्तमा को विवाहा था। सागरदत्त सेठ वैश्य की लड़की विमला से विवाह किया था। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ५८७ तात्पर्य यह है कि जीवंधर को क्षत्रिय मानिये या वैश्य, दोनों दशाओं में उनका विजातीय विवाह होना सिद्ध है। और वे अनेक विजातीय विवाह करके भी मोक्ष गये।

१५—शालिभद्र सेठ ने विदेश में जाकर अनेक विदेशीय एवं विजातीय कन्याओं से विवाह किया था।

१६—अग्निभूत स्वयं ब्राह्मण था, उसकी एक स्त्री ब्राह्मणी थी और दूसरी वैश्य। यथा—

विप्रस्तत्राग्निभूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया।
परा वैश्यसुता, सूनुर्ब्राह्मण्यां शिवभूतिभाक् ॥
दुहिता चित्रसेनाख्या विट्सुतायामजायत ॥

(उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७१-७२)

१७—अग्निभूत की वैश्य पत्नी से चित्रसेना कन्या हुई और वह देवशर्मा ब्राह्मण को विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७३)

१८—तद्भव मोक्षगामी महाराजा भरत ने ३२ हजार म्लेच्छ कन्याओं से विवाह किया था। किन्तु उनका दर्जा कम नहीं हुआ था। जिन म्लेच्छ कन्याओं को भरत ने विवाहा था वे म्लेच्छ धर्म-कर्म विहीन थे। यथा—

इत्युपायैरुपायज्ञः साधयन् म्लेच्छभूभुजः।
तेभ्यः कन्यादिरत्नानि प्रभोर्भोग्यान्युपाहरत् ॥१४१॥
धर्मकर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः १४२॥

(आदिपुराण पर्व ३१)

जबकि ऐसे धर्म कर्म-विहीन म्लेच्छों की कन्याओं से विवाह कर लेना निषिद्ध या धर्मविरुद्ध नहीं था तब [illegible] परस्पर की उपजातियाँ उनसे कुछ गई बीती हैं [illegible] है? ऐसी स्थिति में कम से कम जैनों की उपजातियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध क्यों नहीं प्रारम्भ कर देना चाहिये?

१६—श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने भाई गजकुमार विवाह क्षत्रिय कन्याओं के अतिरिक्त सोमशर्मा ब्राह्मण पुत्री सोमा से भी किया था। (हरिवंशपुराण ब्र० जिनदा ३४-३६ तथा हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२०—मदनवेगा 'गौरिक' जाति की थी। वसुदेव जी क 'गौरिक' जाति नहीं थी। फिर भी इन दोनों का विवाह हुआ था। यह अन्तर्जातीय विवाह का अच्छा उदाहरण है। (हरि वंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२१—सिंहक नाम के वैश्य का विवाह एक कौशिक वंशीय क्षत्रिय कन्या से हुआ था।

२२—जीवंधर कुमार वैश्य थे, फिर भी उन्होंने राजा गयेन्द्र (क्षत्रिय) की कन्या रत्नवती से विवाह किया। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६-५१)

२३—राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्मा को जीवंधर कुमार (वैश्य) ने विवाहा था (क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ५, श्लोक ४२-४९)

२४—भगवान शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवें तीर्थंकर हुए हैं। उनकी कई पत्नियाँ तो म्लेच्छ कन्यायें थीं। (शान्तिनाथपुराण)

२५—गोपेन्द्र ग्वाला की कन्या सेठ गन्धोत्कट (वैश्य) के पुत्र नन्दा के साथ विवाही गई थी। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००)

२६—नागकुमार ने तो वेश्या-पुत्रियों से भी विवाह किया था। फिर भी उन्होंने दिगम्बर मुनि की दीक्षा ग्रहण की थी।

(...कुमार चरित्र) इतना होने पर भी वे जैनियों के पूज्य [...] हैं। किन्तु जैन धर्मानुयायी वैश्य जाति में ही परस्पर [अन्तर्ज]ातीय सम्बन्ध करने में जिन्हें सम्यक्त्व का नाश और धर्म का ह्रास दिखाई देता है उनकी विचित्र बुद्धि पर दया [आ]ये बिना नहीं रहती। इन शास्त्रीय उदाहरणों को देखकर [अन्तर्जा]तीय विवाह के विरोधियों को अपनी आंख खोलनी चाहिये।

जैन शास्त्रों में जब इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जिनमें विवाह सम्बन्ध के लिये किसी वर्ण जाति या धर्म का विचार नहीं किया गया है और ऐसे विवाह करने वाले स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुये हैं तब एक ही वर्ण एक ही धर्म और एक ही प्रकार के जैनियों में पारस्परिक सम्बन्ध (अन्तर्जातीय विवाह) करने में कौनसी हानि है?

ऐतिहासिक प्रमाण

इन शास्त्रीय प्रमाणों के अतिरिक्त ऐसे ही अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं।

१ सम्राट चन्द्रगुप्त ने ग्रीक देश के म्लेच्छ राजा सैल्यूकस की कन्या से विवाह किया था। और फिर अन्तिम भद्रबाहु स्वामी के निकट दिगम्बर मुनि हो गये थे।

२—आबू मन्दिर के निर्माता तेजपाल प्राग्वाट (पोरवाड़) जैन थे, और उनकी पत्नी मोढ़ जाति की थी। फिर भी

वे बड़े धर्मात्मा थे ५१ हजार श्वेताम्बरों और ३ सौ दिगम्बर ने मिलकर उन्हें संघपति, पद से विभूषित किया था। यह संवत् १२२० की बात है। तेजपाल की विजातीय पत्नी थी, फिर भी वह 'धर्मपत्नी' के पद पर आरूढ़ थी। इस सम्बन्ध में आबू के जैन मन्दिर मे सम्वत् १२६७ का जो शिलालेख मिला है वह इस प्रकार है:—

ॐ सम्वत् १२८७ वर्षे वैसाख सुदी १४ गुरौ प्राग्वाट-ज्ञातीया चंड प्रचंड प्रसाद महश्री सोमान्वये महं श्री असराज सुत महं श्री तेजपालने श्रीमत्पत्तनवास्तव्य मोढ़ ज्ञातीय ठ० आल्हणसुत ठ० आससुतायाः ठकराज्ञी संतोषाकुक्षिसंभूतायाः महं श्री तेजपालः द्वितीय भार्या मह श्र सुहडादेव्याः श्रेयार्थं ॥"

यह आज से ७०० वर्ष पूर्व एक सुप्रसिद्ध महापुरुष द्वारा किये गये अन्तर्जातीय (पोरवाढ़ + मोढ़) विवाह का उदाहरण है।

३—मथुरा के एक प्रतिमा लेख से विदित है कि उसके प्रतिष्ठाकारक वैश्य थे। और उनकी धर्मपत्नी क्षत्रिया थी।

४—जोधपुर के पास घटियाला ग्राम से सम्वत् ९१८ का एक शिलालेख मिला है। इसमें कक्कुक नामक व्यक्ति के जैन मन्दिर, स्तम्भादि बनवाने का उल्लेख है। यह कक्कुक द्वारा उस वंश का था जिसके पूर्व पुरुष ब्राह्मण थे और उन्होंने क्षत्रिय कन्या से विवाह किया था।

(प्राचीन जैन लेख संग्रह)

५—पद्मावती पोरवालों (वैश्यों) का पांडों (ब्राह्मणों) के साथ अभी भी कई जगह विवाह सम्बन्ध होता है। यह

[illegible] ब्राह्मण हैं और पद्मावती पोरवालों में विवाह [illegible]रादि कराते थे। पश्चात् इनमें भी परस्पर बेटी व्यवहार [illegible] हो गया।

६—करीब १५० वर्ष पूर्व जब बीजावर्गी जाति के लोगों [illegible] के समागम से जैनधर्म धारण कर लिया तब [illegible] बीजावर्गियों ने उनका बहिष्कार कर दिया तब उन्हें बेटी [व्यव]हार की कठिनाई दिखाई देने लगी। तब जैन बीजावर्गी [illegible] घबराये। उस समय दूरदर्शी खंडेलवालों ने उन्हें [आश्वा]सना देते हुये कहा कि "जिन्हें धर्म-बन्धु कहते हैं उन्हें [जाति]-बन्धु कहने में हमें कुछ भी संकोच नहीं है। आज ही [से] हम तुम्हें अपनी जाति के गर्भ में डालकर एक रूप किये [लेते] हैं।" इस प्रकार खण्डेलवालों ने बीजावर्गियों को अपने में मिला कर उनके साथ बेटी व्यवहार प्रारम्भ कर दिया।

७—जोधपुर के पास से संवत् ९०० का एक शिलालेख मिला है। जिससे प्रगट है कि एक मन्दार ने जैन मन्दिर बनवाया था। उसका पिता क्षत्रिय और माता ब्राह्मणी थी।

८—राजा अमोघवर्ष ने अपनी कन्या विजयादित्य राजा [illegible] को विवाही थी।

इन शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध है कि [illegible] विवाहादि के लिये जाति मूलक [illegible] नहीं है प्रत्युत जातिगत भेद भाव के बिना ही विवाह करके [illegible] कन्या को जैनधर्म तथा जैनाचार के अनुकूल [illegible] किया जाता था।

जातिमद और जैन दीक्षा

जहां जैनाचार्यों ने जातिमद की पद-पद पर निन्दा की है वहां वर्तमान जैन समाज में जाति-मद की पूजा हो रही है, हमने धर्म के असली रूप को भुला दिया है और जाति के विकृत रूप को असली रूप मान लिया है। श्री अमितगति आचार्य ने जातियों को कल्पित और मात्र आचार पर आधारित बताया है। यथाः—

ब्राह्मण-क्षत्रियादीनां चतुर्णामपि तत्वतः।
एकैव मानुषीजातिराचारेण विभज्यते॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह जातियां तो वास्तव में आचरण पर ही आधारित हैं। वास्तव में तो एक मनुष्य जाति ही है। यदि इन जातियों में वास्तविक भेद माना जाय तो आचार्य कहते हैं:—

भेदे जायते विप्राणां क्षत्रियो न कथंचन।
शालिजातौ मया दृष्टः कोद्रवस्य न संभवः॥

अर्थात्—यदि इन जातियों का भेद वास्तविक होता तो एक ब्राह्मणी से कभी क्षत्रिय-पुत्र उत्पन्न नहीं होना चाहिये था क्योंकि चावलों की जाति में मैंने कभी कोदों उत्पन्न होते नहीं देखे।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जैनाचार्य जातियों को परम्परागत स्थायी नहीं मानते और ये ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रियसंतान का

उत्पन्न होना स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में समझ में नहीं आता कि हमारे आधुनिक स्थितिपालक पंडित लोग जातियों को अजर अमर किस आधार पर मान रहे हैं। और असवर्ण विवाह का निषेध कैसे करते हैं। जहाँ आचार्य महाराज ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रिय सन्तान का होना मानते हैं वहाँ हमारे स्थितिपालक पंडित उसे धर्म का अनाधिकारी बतलाते हैं और कहते हैं कि उसकी पिण्डशुद्धि नहीं रहेगी। इस प्रकार पिण्डशुद्धि को धर्म से भी अधिक महत्वपूर्ण मानने वालों के लिये श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है:—

णवि देहो वंदिज्जइ णवि य कुलो णवि य जाइ संजुत्तो।
को वंदिम गुणहीणो णहु सवणो णेव सावओ होई॥

—दर्शन पाहुड़।

अर्थात्—न तो देह की वन्दना होती है न कुल की और न ऊँचा जाति का कहलाने से ही कोई बड़ा हो जाता है। क्योंकि गुणहीन की कौन वन्दना करेगा? गुणों के बिना कोई श्रावक या मुनि भी नहीं कहा जा सकता।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गुणों के आगे जाति या कुल का कोई मूल्य नहीं है। अकुलीन और नीच जाति के कहे जाने वाले अनेक गुणवान महापुरुष वन्दनीय हो गये हैं और हो सकते हैं जब कि बड़ी जाति और बड़े कुल के कहे जाने वाले अनेक गोमुखव्याघ्र नीच माने गये हैं। इसलिये जाति-मद को छोड़कर गुणों को पूजा करना चाहिये।

पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी— वर्तमान युग के सर्वमान्य जैन सन्त-पुरुष हैं। उन्होंने अपने उपदेशों, प्रवचनों और लेखों में पद पद पर घोषित किया है कि जातिमद का त्याग कर गुणों की प्रतिष्ठा करो। उनकी 'जीवनगाथा' नामक पुस्तक से यहाँ कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं, जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि वे कितने उदारमना हैं, और उन्होंने जैनधर्म की उदारता को किस रूप में समझा है।

१—यह कोई नियम नहीं कि उत्तम कुल में जन्म लेने से ही मनुष्य उत्तम गति का पात्र हो और जघन्य कुल में जन्म लेने से ही अधम गति का पात्र हो। यह तो परिणामों की निर्मलता और कलुषता पर निर्भर है। (पृष्ठ ३१०)

२—यह कोई नियम नहीं कि अमुक जाति में ही सदाचारी हो और अमुक जाति में नहीं। (पृष्ठ ३६२)

३ आत्मा तो सब का एक लक्षण वाला है, केवल कर्मकृत भेद है। चारों गतिवाला जीव सम्यग्दर्शन का पात्र है। फिर क्या शूद्रों को सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता? सम्यग्दर्शन की बात तो दूर, अस्पृश्य शूद्र श्रावक के व्रत धर सकता है, क्षुल्लक भी हो सकता है। (पृष्ठ ३५२)

४—जब कि चारों गतियों में सम्यग्दर्शन हो सकता है, तब पंचलब्धियाँ होने पर यदि भंगी को सम्यग्दर्शन हो जावे तो कौन रोकने वाला है? (पृष्ठ ६ १)

५—जैसे सूर्य का प्रकाश किसी जाति की अपेक्षा नहीं करता, धर्म भी किसी जाति-विशेष की पैतृक सम्पत्ति नहीं। (पृष्ठ ६१३)

श्री तारण स्वामी—सोलहवीं शताब्दी में जैन समाज में एक आध्यात्मिक संत हो गये हैं। उन्होंने अपने 'खातिका विशेष ग्रन्थ' के तीसरे पाठ में एक सूत्र लिखा है—

"ऊँच नीच दरयन तदु निगोद खाडे दग्पते।"

अर्थात्—जो मनुष्य अभिमान के वशीभूत होकर दूसरों को नीचा और अपने को ऊँचा समझता है वह निगोद में भ्रमता है।

उन्हीं ने अपने 'उपदेश शुद्धसार' ग्रंथ में कहा है—

"जाइउल न हु पिच्छदि सुद्ध सम्मत्त दंसन पिच्छइ।"

अर्थात्—जाति कुल को कौन पूछता है? वास्तव में तो एक सम्यग्दर्शन ही महत्व का होता है। अथवा यों कहना चाहिये कि शुद्ध सम्यग्दर्शन के लिये किसी जाति या कुल की आवश्यकता नहीं होती वह किसी भी उच्च या नीच कुल वाले को हो सकता है।

इस प्रकार प्राचीन से प्राचीन और आधुनिकतम जैनाचार्यों, सन्त पुरुषों एवं महात्माओं ने जाति मद की निन्दा की है और जाति कुल आदि को महत्व न देकर गुणों एवं आचरण को ही कार्यकारी माना है। साथ ही यह भी स्पष्ट घोषित किया है कि जैनधर्म में दीक्षित होने के लिये कोई भी जाति या कुल बाधक नहीं हो सकता। आगे के प्रकरण में दिये गये प्रमाणों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा।

卐

जो चाहे सो आये !

जैनधर्म की सबसे बड़ी उदारता यह है कि उसका द्वार सबके लिये सदैव खुला रहता है। भगवान महावीर की वाणी, जैनाचार्यों के उपदेश और जैन शास्त्रों के उद्धरणों से स्पष्ट है कि जैनधर्म में दीक्षित होने के लिये सबको सदा खुला निमंत्रण है। यह बात दूसरी है कि वर्तमान जैन समाज ने जैनधर्म की उदारता को भुला दिया है, और नवागन्तुकों के प्रति विचित्र प्रकार की रोक-थाम होने लगी है, किन्तु जैनधर्म की यह स्पष्ट घोषणा है कि 'जो चाहे सो आये। और आत्मकल्याण करे।"

स्वर्गीय में सन्तपुरुष न्यायाचार्य क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी की जैन समाज में बड़ी मान्यता रही है। वे जैनधर्म के मर्मज्ञ, जैनाचार के परिपालक और करुणामूर्ति महापुरुष थे, उन्होंने अनेक बार अपने प्रवचनों में जैनधर्म की उदारता की घोषणा की थी। उनके अनेक उदार प्रवचनों में से एक का कुछ अंश है:-

"भइया! धर्मधारण के सम्बन्ध में लोग विवाद करते हैं, किन्तु इसमें विवाद की क्या बात है! धर्म पर न तो किसी जाति का अधिकार होता है और न किसी वर्ग की मालिकी! धर्म को तो जो पाले, उसी का है। धर्म धारण करने से कौन

किसे रोक सकता है? धर्म सभी का उद्धारक है। जो धारण करे उसी का धर्म।'

इस युग के आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी ने सोनगढ़ (काठियावाड़) में बैठकर अपने निर्मल प्रवचनों के द्वारा हजारों नर-नारियों को जैनधर्म की ओर आकर्षित किया है। उनकी छत्रछाया में रहकर हर किसी वर्ण, समाज और वर्ग का व्यक्ति जैनधर्म की आराधना कर सकता है। यहाँ तक कि अनेक 'हरिजन' बन्धु भी जैनधर्म का पालन करने लगे हैं। सचमुच ही वे जैनधर्म के यथार्थ उपदेष्टा हैं। उस आश्रम में हमने इस भावना को क्रियारूप में स्पष्ट देखा है कि जो चाहे सो आये। हर किसी को जैनधर्म धारण करके आत्मकल्याण करने का समान अधिकार है।'

जैनधर्म की यह विशेषता है कि उसमें बिना किसी भेदभाव के किसी को भी दीक्षित करके समान अधिकार दिये जा सकते हैं। आदिपुराण पर्व ३९ श्लोक ६० से ७१ तक देखने से यह उदारता भलीभाँति ज्ञात हो जायगी। इस प्रकरण में स्पष्ट कहा— "विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षता ॥"

इसी विषय को टीकाकार पं० दौलतराम जी ने इस प्रकार लिखा है "वह भव्य पुरुष जो धर्म के धारक उत्तम श्रावक हैं तिनसूं कन्या प्रदानादि सम्बन्ध की इच्छा करे तो वार श्रावक बड़ी क्रिया के धारक तिनकूं पुकार कर कहे है गुरु के अनुग्रह तें अयोनिसंभव जन्म पाया आप सरीखी क्रियानी का आचरण करूं हूं तातें आप मोहि समान करो।

अत्यावश्यक निवेदन

महानुभाव !

'जैनधर्म की उदारता' की इससे पूर्व अनेक आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके गुजराती मराठी आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद भी मुद्रित हो चुके हैं। इस पुस्तक के अनुमोदन में निम्नांकित महानुभावों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है—

१-स्व० आचार्य सूर्यसागर जी महाराज २-त्यागमूर्ति स्व० बाबा भागीरथ जी वर्णी, ३-धर्मरत्न स्व० दीपचन्द जी वर्णी, ४-स्व० मुनि श्री हिमांशुविजय जी न्यायतीर्थ ५ मुनि श्री तिलकविजय जी महाराज, ६ मुनि श्री न्यायविजय जी महाराज न्यायतीर्थ, ७-स्व० मुनि श्री पूनमचन्द जी महाराज धर्मोपदेशक ८-स्व० मुनि श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज ९-स्व० पं० वंशीधर जी न्यायालंकार १०-स्व० बैरिस्टर चम्पतराय जी ११-स्व० पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार, १२-हिन्दी के ख्यातनाम लेखक श्री जैनेन्द्रकुमार जी १३-बा० लक्ष्मीचन्द्र जी एम० ए० (मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ), १४-स्व० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य आदि।

[कृपया पन्ना पलटिये]